2

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

डा० लंका सुन्दरम

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

सुविख्यात सांसदविद्
मोनोग्राफ सीरीज

डा० लंका सुन्दरम

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

लो० स० स० (पी०आर०आई०एस०—ई०एफ०) / (ई०पी०एम०) / 2

© लोक सभा सचिवालय, 1990

जून, 1990

मूल्य : रु० 30-00

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन तथा प्रबन्धक, फोटो-लिथोविंग, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

आमुख

भारतीय संसदीय ग्रुप के निर्णयानुसार सुविख्यात सांसदविदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा हमारे राष्ट्रीय एवम् संसदीय जीवन में उनके योगदान को स्मरण करने, तथा उसे लेखनीबद्ध करने हेतु 'सुविख्यात् सांसदविद मोनोग्राफ सीरीज' नामक एक नई सीरीज मार्च, 1990 में आरम्भ की गई थी। वर्तमान मोनोग्राफ— इस सीरीज में दूसरी है— इसमें सांसदविद डा० लंका सुन्दरम द्वारा समाज के प्रति की गई बहुमूल्य सेवाओं का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित इस मोनोग्राफ को 6 जुलाई, 1990 को इस महान् सांसदविद की वर्षगांठ मनाने के लिए आयोजित एक समारोह में जारी किया जा रहा है।

मोनोग्राफ के दो भाग हैं। पहले भाग में डा० लंका सुन्दरम की संक्षिप्त जीवन-झांकी है जिसमें उनके घटना-प्रधान प्रारम्भिक जीवन की कुछ झलकियाँ, शैक्षिक योग्यताएं, सामयिक सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल करने में उनके योगदान, उनकी उत्साही पत्रकारिता, भाषण दक्षता और इससे भी कहीं अधिक उनके विशिष्ट संसदीय जीवन को सम्मिलित किया गया है। यद्यपि डा० लंका सुन्दरम का संसदीय जीवन बहुत संक्षिप्त रहा तथापि वह अत्यन्त श्रेष्ठ था और सदन में उन्होंने अपने कार्य की अमिट छाप छोड़ी है। मोनोग्राफ के दूसरे भाग में डा० लंका सुन्दरम द्वारा लोक सभा में दिये गये कुछ श्रेष्ठ भाषणों का सारांश दिया गया है।

उनकी वर्षगांठ के अवसर पर हम डा० सुन्दरम की याद में सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आशा है यह मोनोग्राफ पाठकों के लिये रुचिकर और उपयोगी सिद्ध होगा।

नई दिल्ली;
जून, 1990

सुभाष काश्यप,
महासचिव, लोक सभा तथा
महासचिव,
भारतीय संसदीय दल।

विषय-सूची

आमुख

भाग एक

उनका जीवन

1

डा० लंका सुन्दरम

जीवन वृत्त

(3)

भाग दो

उनके विचार

डा० लंका सुन्दरम द्वारा लोक सभा में दिए गए कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण

2

योजनाबद्ध आर्थिक विकास

(19)

3

आर्थिक समस्याएँ

(25)

4

नीति संबंधी मामले

(36)

5
वित्तीय मामले

(43)

6
सार्वजनिक निगमों पर संसदीय नियन्त्रण

(62)

7
संसद का दूसरा सदन

(73)

8
संविधान संशोधन विधेयक

(77)

9
कश्मीर के बारे में प्रस्ताव

(89)

10
रेलवे

(94)

11
प्रेस की भूमिका

(111)

भाग एक

जीवन वृत्त

डा० लंका सुन्दरम — जीवन वृत्त

सुविख्यात संसदविद्, जीवंत तथा जोरदार वक्ता, कलम के धनी, प्रसिद्ध विद्वान, परतिष्ठित पत्रकार तथा वियान अर्थशास्त्री डा० लंका सुन्दरम, सुपुत्र श्री लंका सीतारम्मैया का जन्म 1 जुलाई, 1905 को तत्कालीन अविभाजित मद्रास प्रैज़ीडैंसी के उत्तर पूर्वी तट पर स्थित एक बन्दरगाह नगर **मसुलीपटम** में हुआ था जो कि इतिहास में इसलिए जाना जाता है कि वहाँ अंग्रेजों ने 1611 ई० में अपने दूसरे उपनिवेश की स्थापना की थी।

सुन्दर प्राकृतिक वातावरण तथा **किस्तना** नदी के निरन्तर प्रवाह के साथ-साथ अपने क्षेत्र का पूरी तरह विकसित न होना तथा संसाधनों की कमी ने **अवश्य ही युवा** सुन्दरम के संवेदनशील मन पर प्रभाव छोड़ा होगा जिनमें बचपन से ही **महानता के लक्षण** दिखाई देते थे।

अपने बचपन से ही प्रतिभाशाली छात्र डा० सुन्दरम ने अपनी **प्रारम्भिक** शिक्षा एक प्राइवेट संस्था, **दी हिन्दू हाई स्कूल** में प्राप्त की जहाँ वह दसवीं कक्षा तक पढ़े। बाद में वह मसुलीपटम की प्रमुख शैक्षणिक संस्था **नोबल कालेज** में प्रविष्ट हुए, जिसकी स्थापना डा० रैव० रावर्ट नोवल ने की थी। उनकी बौद्धिक जिज्ञासा तथा वैज्ञानिक नज़रिये ने उन्हें अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के दिनों से ही गम्भीर और होनहार छात्र बना दिया था। 17 वर्ष की छोटी उम्र में ही सुन्दरम का विवाह 1922 में कमला देवी से हुआ। तथापि ज्ञान के लिए उनकी पिपासा बनी रही।

अभी अपने यौवनकाल के आरम्भ में ही उन्हें बड़ौदा के महाराजा महामहिम सेयाजीराव गायकवाड़ से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराजा ने इस नवयुवक की प्रतिभा को पहचाना तथा अपने राज्य की ओर से छात्रवृत्ति प्रदान कर उसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। लंका अभी किशोर ही थे, कि उसने अपनी कानूनी तथा राजनैतिक शिक्षा आरम्भ कर दी। कानून, राजनीति तथा अंतर्राष्ट्रीय मामलों में उच्च शिक्षा के लिए वह लन्दन, जिनेवा तथा हेग गए। दर्शन शास्त्र में डॉक्टर की उपाधि उन्होंने लन्दन में प्राप्त की। उन्होंने प्रख्यात अन्तर्राष्ट्रीय संस्था, दी ग्रोटियस सोसाईटी, लन्दन को

सम्बोधित करने वाले प्रथम भारतीय होने का अद्वितीय सम्मान प्राप्त किया। वहाँ मार्च, 1931 में उन्होंने "इण्डियाज़ इन्टरनेशनल स्टेटस" पर अपना लेख प्रस्तुत किया। इसके लगभग एक वर्ष बाद उन्हें फिर ऐसा प्रथम भारतीय नागरिक होने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जिसका लेख रॉयल इन्स्टीट्यूट आफ इन्टरनेशनल स्ट्डीज़, लन्दन ने स्वीकार किया।

तथापि लंका सुन्दरम विदेश में अपनी शिक्षा जारी नहीं रख सके, क्योंकि इंगलैंड में अपने समय के अन्य छात्रों की तरह वह भी 1931 में द्वितीय गोल मेज कांफ्रेंस की असफलता से उत्पन्न हुई राजनैतिक उथल-पुथल से प्रभावित हुए। यह समय हमारे देश के जीवन में सचमुच घटनापूर्ण था क्योंकि जनता ने स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए अपना संघर्ष तेज़ कर दिया था। बाद के वर्षों में उन्होंने भ्रमणशील जीवन व्यतीत किया, योंकि वह एक समर्पित जन सेवक, जोरदार वक्ता, खोजी पत्रकार तथा इन सबसे बढ़कर एक सक्रिय संसदविद् बन गए।

इसके अतिरिक्त अपने जीवन की विभिन्न अवधियों में डा० सुन्दरम को आन्ध्र विश्वविद्यालय के राजनीति, अर्थशास्त्र तथा इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करने, अमेरीकन अकादेमी ऑफ पोलिटिकल एंड सोशल सांइसिज़ का सदस्य होने तथा इन्स्टीट्यूट ऑफ दी इन्टरनेशनल अफेयर्स का निदेशक के रूप में नेतृत्व करने का भी गौरव प्राप्त हुआ।

सक्रिय संसदविद्

डा० लंका सुन्दरम 1952 में निर्दलीय सदस्य के रूप में पहली लोक सभा में चुन कर आये थे। यद्यपि वे केवल पांच वर्ष के लिए ही रहे लेकिन फिर भी डा० लंका सुन्दरम का संसदीय जीवन सक्रिय रहा और शायद ही कोई क्षण रहा हो जब उन्होंने सदन में अपनी आवाज न उठाई हो अथवा अपनी उपस्थिति से प्रभावित न किया हो। यह इस बात से जाहिर है कि उन्होंने 450 से भी अधिक अवसरों पर जोश और निष्ठा से सदन की बहस में भाग लिंया।

सक्रिय संसदविद के रूप में डा० लंका सुन्दरम ने विभिन्न विषयों में गहरी रुचि दिखाई। चाहे बहस का मुद्दा पाकिस्तान को अमरीकी सैनिक सहायता थी या राष्ट्रपति का अभिभाषण, पंचशील या सरकारी निगम, सुवेज केनाल अथवा दंड संहिता, उन्होंने सदैव सरकार पर प्रश्नों के पैने तीर फैंके और साथ ही साथ तर्कयुक्त दलीलें दी। उसी जोश और अधिकार के साथ उन्होंने अन्य विषयों पर जैसे बेरोजगारी की समस्या, भाषाई प्रांत, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से जुड़े मुद्दे, रेलवे, नजरबंदी कानून संसदीय क्षेत्रों का पुनर्निधारण पर भी विचार व्यक्त किए। उनके विचारों और ठोस सुझावों को सदन में बहुत आदर से लिया जाता था।

डा० सुन्दरम सदन में किसी को भी टोकने का साहस रखते थे, चाहे वह मंत्री हो या सदस्य, यदि उनके द्वारा दिए गए तथ्य उन्हें अप्रमाणिक लगे।

1956 में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलते हुए उन्होंने राष्ट्रपति के अभिभाषण में विदेशी मामलों पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिए जाने पर अपना रोष कुछ इस प्रकार प्रकट किया:

> "मैंने देखा कि उस दिन राष्ट्रपति के अभिभाषण के कुल समय का 55 प्रतिशत समय विदेशी मामलों के उल्लेख पर लगा। जैसा कि मैंने परारंभ में कहा हम अब भी अंग्रेजों की पुरानी परम्पराओं में जकड़े हुए हैं।"*

डा० सुन्दरम ने लोक लेखा समिति के बारे में प्रधानमंत्री की कुछ टिप्पणियों का कड़ा विरोध किया था। प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कांऊसिल आफ स्टेटस के सदस्यों को लोक लेखा समिति से सम्बद्ध होने के संबंध में प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए अन्य बातों के अतिरिक्त कहा: ".....लोक लेखा समिति के सदस्य गलत थे...।" अगले दिन बहस के दौरान डा० सुन्दरम ने प्रधानमंत्री को चुनौती देते हुए कहा:

> "कल प्रधानमंत्री ने कहा था और मैं समझता हूं कि मैं उन्हें ठीक प्रकार से उद्धत कर रहा हूं—कि लोक लेखा समिति का निर्णय गलत था। मैं समझता हूं कि सदन के नेता द्वारा इस प्रकार का वक्तव्य दुर्भाग्यपूर्ण है और यह मैं पूरी जिम्मेदारी से कह रहा हूं क्योंकि लोक लेखा समिति सदन का महत्वपूर्ण अंग है। उन्होंने इस प्रस्ताव पर एकमत होकर निर्णय दिया था और मुझे आशा है कि लोक लेखा समिति के सदस्य जो यहां आज उपस्थित हैं वह समिति के निर्णय को उचित ठहराएंगे।"

बाद में स्पष्टीकरण के जरिये अपनी टिप्पणियों को स्पष्ट करते हुए प्रधान मंत्री ने कहा**:—

> "मैं लोक लेखा समिति के सदस्यों पर कोई आक्षेप नहीं कर रहा हूं। वास्तव में मुझे ऐसा कहना कुछ विचित्र लगा था .....लोक लेखा समिति कतिपय बहुत अधिक महत्व के मामलों पर विचार करती है लेकिन मेरा निवेदन है कि संवैधानिक प्रक्रिया के संबंध में लोक लेखा समिति एक उच्च अधिकारी संस्था नहीं है। मैंने यह महसूस किया था कि उस मामले के बारे में समिति गलत थी।"

---

*लोक सभा वाद विवाद, दिनांक 22 फरवरी, 1956, कालम 655

**लोक सभा वाद-विवाद, दिनांक 13 मई, 1953, कालम 6556-57.

अपने विषय का गहन ज्ञान रखने वाले कुशल वक्ता के रूप में डा० सुन्दरम ने लोक लेखा समिति में राज्य सभा के सदस्यों को सहयोजित करने जैसे महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में निम्नलिखित* टिप्पणी की थी:—

> ".....चूंकि आप नियम समिति के सभापति थे अतः आपने इस प्रश्न पर विचार किया है और पहले ही इस निर्णय पर पहुंच चुके हैं कि उक्त प्रश्न के इस पहलू की विशेष रूप से जांच की जाये कि दूसरे सदन के सदस्यों को इस सदन की समिति में सहयोजित करना है। होता क्या है? ऊपर नियंत्रण कौन रखेगा? सदन के माननीय नेता ने कल कहा था कि यदि यह प्रस्ताव विशेष पारित हो जाता है तो इस प्रस्ताव के उपबंधों के अध्यधीन भविष्य की लोक लेखा समिति की रिपोर्ट केवल इसी सदन के सभा पटल पर रखी जायेगी। तब दूसरे सदन का क्या होगा? स्पष्ट है कि उस स्थिति में इस रिपोर्ट को दूसरे सदन के समक्ष नहीं रखा जा सकता। तथा दूसरी बात यह कि तब इस सदन के चुने हुये प्रतिनिधि से अन्य किसी बाहरी व्यक्ति को सिफारिश करने के लिये समिति में सहयोजित क्यों किया जाये? ये ऐसे मुद्दे हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए।"

17 फरवरी, 1956 को औद्योगिक सेवा आयोग संबंधी संकल्प पर बोलते हुए डा० सुन्दरम ने अन्य बातों के साथ साथ यह भी कहा था:—

> "यह इस सदन का पावन कर्त्तव्य है कि वह यह निर्धारित करे कि सरकारी क्षेत्र के सरकारी उपक्रमों में उच्च प्रबन्धकीय कार्मिकों की भरती किस प्रकार की जाये। मैं निःसंकोच रूप से यही कहूंगा कि सरकारी क्षेत्र की किसी भी संस्था में किसी भी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त न किया जाये जिसे आवश्यक होने पर पहले विदेश न भेजा गया हो और जो उस पद पर कार्य करने के लिये पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित न हो।"

डा० सुन्दरम को सभा में विभिन्न अवसरों पर व्यक्त किये गये मौलिक, विचारोत्तेजक एवम् आलोचनात्मक विचारों के लिए सदैव याद किया जाएगा। सभा में विचारणीय विषयों पर चर्चा में भाग लेने से पूर्व वह एक पत्रकार की भांति उन विषयों के बारे में

---

*लोक सभा वाद-विवाद, दिनांक 13 मई, 1953, कालम 6565.

लगन व अध्यव्यवसायपूर्वक जानकारी हासिल किया करते थे। वे अपने विचारों को जिस आत्मविश्वास तथा साफगोई से प्रकट किया करते थे, इससे इसका दूसरे पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था इन गुणों के कारण ही वह एक महान सांसदविद् बन सके।

एक अर्थशास्त्री

डा० सुन्दरम अपने जमाने के एक जाने-माने अर्थशास्त्री थे। वह हमारे समाज के कमजोर वर्गों की समस्याओं से भली-भांति परिचित थे। डा० सुन्दरम को विश्वास था कि राष्ट्रीय विकास के ढांचे को मजबूत करने के लिए खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करनी होगी और देश में तेजी से औद्योगिकीकरण करना होगा ताकि देश के लिए मजबूत वित्तीय आधार तैयार किया जा सके।

वह खाद्यान्नों को मानव जीवन की एक बुनियादी आवश्यकता मानते थे उन्होंने इस बारे में लिखा है कि भारत में खाद्य समस्या अनिश्चित काल तक चिन्ता का विषय बना रहेगा।

> "हमारे यहां अन्न उत्पादन मौसम की कृपा पर निर्भर है और मौसम अपनी यह कृपा भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न तरीके से बरपाती है। जब तक खाद्य संसाधनों का पूरे भारत में सही बंटवारा नहीं किया जाएगा, तब तक देश में राजनैतिक तथा आर्थिक संतुलन गड़बड़ ही रहेगा।"*

उन्होंने यह भी लिखा है:

> "इस देश में जहां किसी जमाने में दूध और शहद की नदियां बहा करती थीं आज वहां दरिद्रनारायण की हालत बहुत ही हृदय विदारक है। अतः सरकार एवम् जनता को इस दिशा में मिलकर प्रयास करना चाहिए कि हमारे दरिद्रनारायण को कम से कम दो जून की रोटी नसीब हो सके। इसके लिए हमें न केवल राशनिंग व्यवस्था का विस्तार करना होगा व कृषि उत्पादन को बढ़ाना होगा, बल्कि खाद्य उपभोग में बर्बादी। जो हमारे वर्तमान राष्ट्रीय कार्यक्रम का सबसे कमजोर पहलू है, को भी रोकना होगा। तथापि लोगों के समक्ष सबसे पहला काम कृषि उत्पादन में वृद्धि करना है, हाल ही में सरकार

---

*डा० लंका सुन्दरम; थाट्स आन इन्डियाज फ्यूचर कन्टीच्यूशन, कामर्स एन्ड इन्डस्ट्री, नई दिल्ली, 11 दिसम्बर, 1946, पृ० 3

द्वारा चलाया गया अधिक अन्न उपजाओं कार्यक्रम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में बुरी तरह असफल हो गया है।"*

डा० सुन्दरम को पूरा विश्वास था कि देश तभी तरक्की कर सकता है जब उद्योगों को आवश्यकतानुसार पर्याप्त वित्तीय संसाधन मिलें और केन्द्रीय सरकार उन्हें उचित महत्व दे, उन्हें विश्वास था कि भारत के औद्योगीकरण का नियंत्रण केन्द्रीय सरकार को ही करना पड़ेगा। उन्होंने कहा:

> "क्षेत्रीयकरण और स्थानीयकरण ऐसे विषय हैं जिन्हें विस्तारपूर्वक समझाने की आवश्यकता है। अगर रक्षा केन्द्रीय सरकार के कार्यक्षेत्र में आता है तो उद्योगों को भी केन्द्रीय सरकार के कार्यक्षेत्र में आना चाहिए क्योंकि दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं।"

उयोगों को केन्द्रीय सरकार के कार्यक्षेत्र में लाने का एक और कारण यह है कि विदेशों के लिए भारत अलग इकाई के रूप में माना जायेगा और अन्य देशों से भारत अलग इकाई के रूप में माना जायेगा और अन्य देशों से भारत अलग इकाई के रूप में व्यापार करेगा। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार भारत के आर्थिक हितों की रक्षक हो।

डा० सुन्दरम भारत को विदेशी सहायता मिलने के खिलाफ नहीं थे। फिर भी उन्होंने इसमें निहित खतरों के प्रति चेतावनी दी। उन्होंने कहा:

> "हमने हमेशा भारत में विदेशी धनराशि के प्रभाव के प्रति आवाज़ उठाई है। हमने निडरता से भारत और अन्य देशों का अमरीकी प्रभुत्व के शिकंजे में आने के खतरे की ओर प्रकाश डाला है ... ऐसी निन्दा का मतलब यह नहीं कि हम ब्रिटेन और अमेरीका से आर्थिक क्षेत्र में मदद न मांगे। बल्कि हमें उनकी मदद की जरूरत है। परन्तु हमें याद यह रखना है कि हमें इस मदद को दूसरी दिशा में इस्तेमाल करने में संकोच नहीं होना चाहिए जिससे भारत के आर्थिक हितों और समप्रभुता को खतरा न हो। हमें यह भी याद रखना है कि यह हमारे देश के ही नहीं बल्कि मदद करने वाले देशों के भी हित में है। विदेशी धनराशि के प्रति हमारी नापसन्दगी का मतलब यह नहीं कि हम भारतीय उद्योगों में सहभागिता के प्रस्तावों को मना करें। इस सहभागिता में एक शर्त यह भी होगी कि प्रस्ताव की मंजूरी का मतलब यह नहीं कि हमारी आर्थिक

---

*डा० लंका सुन्दरम, कृषि आत्म निर्भरता सुनिश्चित करने के लिए उर्वरक उद्योग की स्थापना, वाणिज्य तथा उद्योग, नई दिल्ली, 8 मई, 1946, पृ० 3

गुलामी की बेड़ी और मज़बूत हो।"*

एक निपुण अनवेषक होने के नाते, डा० लंका सुन्दरम ने भारतीय संघ के राज्यों और प्रान्तों के वित्तीय और आर्थिक प्रणालियों के एकीकरण के आधार की जांच की।

आंकड़ों के जादुगर:

डा० लंका सुंदरम का आंकड़ों के प्रति विशेष मोह था उनके प्रायः सभी लेखों और भाषणों में आंकड़ों और तिथियों का एक विशेष स्थान दिखाई देता है जिनका उपयोग वह बड़ी कारीगरी से करता थे।

सदन में दिए गए उनके भाषण इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि अपने तर्क को सशक्त बनाने के लिए वह अकसर आंकड़ों का प्रयोग करते थे जिन्हें वह सरकारी रिपोर्टों के माध्यम से अथवा स्वयं एकत्र करते थे। उदाहरणार्थ 1954 में सामान्य बजट पर हो रही चर्चा के दौरान उन्होंने अपने एक भाषण में कहा:

> "मैं इस वाद-विवाद के संबंध में सदन का ध्यान कुछ आंकड़ों के प्रति आकर्षित करना चाहता हूँ। योजना अवधि के दौरान अब तक राज्यों को जो कुल अग्रिम धन राशियां इत्यादि दी गई हैं मैंने उनका हिसाब लगाया है। अगर कुछ गलती हो तो माननीय सदस्य इसमें सुधार कर सकते हैं, शायद गलती की गुंजाइश 215 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी 667 करोड़ रुपये की राशि राज्यों को उपलब्ध कराई गई है। इसका हिसाब कैसे लगाया गया है? 1951-52 से 1954-55 तक 98.93 करोड़ रुपये की राशि अनुदान के रूप में दी गई; 449.78 करोड़ रुपये के राशि अग्रिम धन के रूप में राज्यों को दी गई; 119.67 करोड़ रूपये की राशि उसी अवधि के दौरान विशेष विकास और अन्य निधियों से दी गई। इस सभा की एक सांविधिक समिति में आपके साथ कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।"

आपको याद होगा कि प्राकलन समिति ने भी अपने एक प्रतिवेदन में यह

---

*डा० लंका सुन्दरम: फ्यूचर ऑफ इण्डो-अमेरीकन इकॉनामिक रिलेशन्स, कामर्स एण्ड इंडस्ट्री, नई दिल्ली, 20 नवम्बर, 1946, पृ० 3

कहा था कि इन अग्रिम धनराशियों की वसूली सरलता से संभव नहीं। अन्य शब्दों में, हम एक जंगल में, ऐसे जाल में उलझ जाते हैं जहां से किसी तर्क संगत निष्कर्ष पर पहुँचना बड़ा कठिन है। मैं अपने माननीय मित्र श्री तुलसीदास से पूर्णतया सहमत हूँ—अफसोस वह यहां उपस्थित नहीं हैं—कि इस सदन को यह सुनिश्चित करने के लिए तत्काल कोई कार्रवाई करनी चाहिए कि 667 करोड़ रुपये की यह राशि और अगले दो वर्षों में योजना के अंतगर्त दी जाने वाली असीम धनराशि का लेखा-जोखा राज्य दें।

'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' ने उनकी पुस्तक 'इण्डिया इन वर्ल्ड पोलिटिक्स' की समालोचना करते हुए कहा 'जिस कुशलता से लेखक ने आकड़ों का प्रयोग किया है उससे स्वर्गीय दिनशाह इदुलजी वाशा — आंकड़ों के आदुगर—की—याद ताज़ा हो जाती है।'

एक प्रतिष्ठित लेखक

एक कुशल वक्ता होने के साथ साथ डा० लंका सुन्दरम ने एक महान लेखक के रूप में भी ख्याति प्राप्त की। विभिन्न-विषयों पर उनके विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थों को ख्याति प्राप्त हुई और पर्याप्त रुचि के साथ उनका अध्ययन किया गया। उनकी लेखनी सशक्त, निष्ठावान और बुद्धिमत्तापूर्ण थी। उनकी शैली सरल, सहज थी और उन्होंने तथ्यों को विचित्र स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया था।

वर्ष 1944 में उनके तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुये जिनमें ऐसे तथ्यों का उद्घाटन किया गया जिनमें से प्रत्येक अपनी शैक्षणिक प्रतिभा के लिये स्मरणीय है। वर्ष 1944 में प्रकाशित अपने ग्रंथ 'इण्डिया इन वर्ल्ड पालिटिक्स' में डा० सुन्दरम ने भारत की स्वतंत्रता के लिये सशक्त तर्क देते हुये भारत-ब्रिटिश सम्बन्धों का अन्वेषी विश्लेषण करने का प्रयास किया। वर्ष 1944 में ही प्रकाशित अपने दूसरे ग्रंथ 'नेशनेलिज्म एन्ड सैल्फ सफिसियेन्सी' में डा० सुन्दरम ने राष्ट्रीय आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिये सशक्त तर्क प्रस्तुत किया। तत्कालिन राजनैतिक तथा आर्थिक विचारधारा के लिये एक उत्तम योगदान के रूप में सराही गई इस पुस्तक को देश में बहुत ख्याति प्राप्त हुई। इसी वर्ष प्रकाशित हुये एक अन्य विचारोत्तेजक ग्रंथ 'ए सैक्यूलर स्टेट फार इण्डिया' में डा० लंका सुन्दरम ने

राजनीति में धर्म की ओर रुझान का उल्लेख करते हुये धर्म पर आधरित राष्ट्रीय राजनीति अपनाने के विरुद्ध प्रबल तर्क दिया।

वर्ष 1946 में प्रकाशित **'इण्डियन आरमीज़ एण्ड देयर कास्ट्स'** में डा० सुन्दरम ने भारतीय सेना की समस्याओं और रक्षा व्यय पर विस्तार से चर्चा की है। यह एक ऐसा विषय था जिस पर शायद ही कोई ग्रंथ उपलब्ध था।

वर्ष 1933 में प्रकाशित अपनी एक पहली पुस्तक **'इण्डियन्स ओवरसीज़'** में डा० सुन्दरम ने समुद्रपारिक देशों में रहने वाले भारतवासियों के बारे में एक क्रमबद्ध सर्वेक्षण प्रस्तुत किया।

डा० सुन्दरम ने कुछ-अन्य-प्रतिष्ठित ग्रंथ **'काऊ प्रोटैक्शन इन इण्डिया'** (1927), **'मुराल लैण्ड-रैवेन्यू सिस्टम** (1930), **'यूनियम फाइनेंसेज'** (1947), थे।

डा० सुन्दरम **'कामर्स—एण्डस्ट्री'** नामक एक पत्रिका भी निकालते थे जिसके वह स्वयं सम्पादक भी थे। यह एक लोकप्रचलित साप्ताहिक पत्रिका थी जिसमें भारत के सूबों और राज्यों के व्यापार उद्योग तथा वित्त की समीक्षा की जाती थी।

इस प्रकार उस समय का राष्ट्रीय-तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का शायद ही कोई ऐसा विषय होगा जो डा० सुन्दरम की लेखनी से बचा होगा।

एक मजदूरसंघ नेता

श्रमिकों के मित्र एवं हिताभिलाषी डा० सुन्दरम बहुत से मज़दूर संघों के प्रेसीडेंट रहे, जिससें प्रमुख, हरिजन एन्ड ट्रेडयूनियन वर्कर, यूनियन-आफ पोस्ट्स एन्ड टेलीग्राफ वर्कर्स, विजयवाड़ा प्राविंशियल ब्रांच, सिन्धिया शिपयार्ड एम्पलाईज यूनियन, विशाखपटनम डिस्ट्रिम्ट गोधी सर्वोदय और दी आल इण्डिया रेलवे मिनिस्टीरियल स्टाफ एसोसियेशन हैं।

डा० सुन्दरम सभा में रोजगार नीतियों, कर्मचारियों के अधिकार, मजदूर संघों को मान्यता, प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी, मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं द्वारा हड़ताल, पद दलितों का उत्थान, आदि जैसे मामलों को सशक्त रूप से उठाने के लिए कोई अवसर नहीं चूके। ऐसे सभी अवसरों पर वे काफी भावावेश से बोले। रोजगार और श्रम संबंधी मुद्दों पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सरकार से यह अनुरोध किया कि विभिन्न सरकारी विभागों के

अन्तर्गत कर्मचारियों के अधिकारों और उनकी सेवा शर्तों को विनियमित किए जाने की प्रक्रिया की और मजदूर संघों को मान्यता दिए जाने अथवा न दिए जाने की प्रक्रिया की समीक्षा की जाए।

आदिवासियों द्वारा चुने जाने पर, उन्होंने पद दलितों के उत्थान के लिए सभा में अनेक अवसरों पर अपनी आवाज बुलन्द की। उन्होंने वर्ष 1953 में अनुदानों की मांगों पर चर्चा के दौरान बोलते हुए सरकार से अनुरोध किया कि गोदावरी और विशाखापटनम जिलों की अनुसूचित जनजातियों की ओर समुचित ध्यान दिया जाए। उन्होंने बताया कि भारत के इस दुर्गम पश्च प्रदेश में, जो कि इस देश की उदर है, लगभग 600,000 लोग पूर्णतः उपेक्षित हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्ति

डा० लंका सुन्दरम को विपुल जानकारी प्राप्त करने और मानव समुदाय की समस्याओं को समझने की उनकी तीव्र उत्कंठा ने उन्हें युवावस्था में ही पश्चिम और पूर्व के दोनों देशों की व्यापक रूप से यात्रा करने के लिए प्रेरित किया। छात्र के रूप में, डा० सुन्दरम ने लन्दन से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की और वह 'हेग अकादेमी आफ इंटरनेशनल ला', के शोध छात्र भी रहे।

कानूनी और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के एक प्रतिष्ठित अध्येता के रूप में उन्हें संयुक्त राष्ट्र की महासभा (1946) और मानव अधिकार आयोग (1947) में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य के रूप में चुना गया। वे 'लीग आँफ नेशन्स' के संयोजक (कॉलोबोरेटर) भी थे और उन्हें जो भी कार्य सौंपा गया उस पर अपने कार्य की अमित छाप छोड़ी।

डा० सुन्दरम भारत में दो दशक से अधिक अवधि तक विभिन्न भारतीय विदेशी संस्थाओं में अवैतनिक प्रतिनिधि रहे। उन्होंने विदेशों में भारतवासियों की हालातों का गम्भीरता से अध्ययन करने के लिए सीलोन, मलाया, बर्मा, स्याम और इण्डो-चाइना का दौरा किया। वर्ष 1930 में डा० सुन्दरम ने "भारतीय उत्प्रवास पर अन्तर्राष्ट्रीय पहलू" पर लन्दन में साम्राजिक सम्मेलन में एक ज्ञापन प्रस्तुत किया। वर्ष 1931 में अपने सीलौन दौरे के दौरान उन्होंने वहां भारतीय श्रमिकों की समस्याओं की व्यवस्थित रूप से समीक्षा की। औपनिवेशक कार्यालय में सीलोन-भारतीय शिष्ट-मण्डल के सचिव

के रूप में उन्हें भारतीय प्रवासियों की समस्याओं को समझने का दूसरा अवसर प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात् अपने स्मरणीय लेख, **इन्डियन ओवरसीज** (1933) में डा० सुन्दरम ने मौलॉन, मलाया, वेस्ट इन्डीज, फीजी, मोरिशस, कनाडा, पूर्व अफ्रीका और दक्षिण अफ्रीकी संघ में भारतीयों की ज्वलन्त समस्याओं का व्यवास्थित ढंग से विश्लेषण किया और उन्हें उजागर किया।

अपने समय के अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर डा० सुन्दरम की गहन सूझबूझ, कई अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों के प्रति उनकी घनिष्ट सम्बद्धता उन संस्थाओं, जिनमें उन्होंने अपने विशिष्ट समर्पण भाव से कार्य किया, और वंचित तथा दलित लोगों, जिनका वे सदैव समर्थन करते रहे, के प्रति उनकी अमूल्य सेवा ने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक जानीमानी हस्ती बना दिया।

डा० लंका सुन्दरम का तीन दशक तक समाज की उल्लेखनीय सेवा करने के पश्चात् दिनांक 8 जनवरी, 1967 को नई दिल्ली में 63 वर्ष की आयु में निधन हो गया। तथापि राष्ट्र सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस बहुमुखी प्रतिभा द्वारा किए गए योगदान को अभी भी याद करता है।

स्रोत

पुस्तकें:

1. सुन्दरम, डा० लंका: **इन्डियन ओवरसीज**, श्री ए० नातेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास, 1933.
2. सुन्दरम, डा० लंका: **इन्डिया इन वर्ल्ड पालीटिक्स**, सुल्तान चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1944.
3. सुन्दरम, डा० लंका: **इन्डियाज आर्मीज एण्ड देयर कोस्टस**, अवन्ति प्रकाशन, बम्बई, 1946.
4. सुन्दरम, डा० लंका: **यूनियन फाइनैन्सेज**, दी नेशनल इन्फॉरमेशन एण्ड पबिलकेशन लिमिटेड, बम्बई, 1947.
5. फ्रान्सिस, डब्ल्यू: इम्पीरियल गजेटीपर ऑफ इन्डिया, प्रॉविन्सियल सिरीज, मद्रास, खण्ड-I, ऊषा पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, पृष्ठ-319.

लेख:

1. सुन्दरम, डा० लंका: इनसिडयस अमेरिकन इकॉनमिक डेमिनेशन ऑफ चाइना — एंग्लो-अमेरिकन पेरेलल पॉलिसीज इन चाइना एण्ड इन्डिया, **कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री**, नई दिल्ली, खण्ड-XXV सं० 1, 2 जनवरी, 1946.
2. सुन्दरम, डा० लंका: हैज गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया एबडम्टेड पावर्स इन फेवर ऑफ बर्मा? **कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री**, नई दिल्ली, खण्ड-XXV, सं० 16, 17 अप्रैल, 1946.
3. सुन्दरम, डा० लंका: इस्टैबलिशमेन्ट ऑफ फर्टिलाइजर इन्डस्ट्री फोर इन्शुअरिंग एग्रिकिल्चरल सेल्फ सफिसिएन्सी, कॉमर्स एण्ड इन्डस्ट्री, खण्ड-XXV, सं० 19, 8 मई, 1946.
4. सुन्दरम, डा० लंका: प्रोस्पेक्ट्स फॉर इन्टॅरिम गवर्नमेन्ट इन रिलेशन टू लांग-टर्म सैटलमेन्ट, **कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री**, खण्ड-XXV, सं० 25, 19 जून, 1946.
5. सुन्दरम, डा० लंका: नीड फार इस्टैबलिशमेन्ट ऑफ स्पेशल एशोसिएशन टू फोम्टर इन्डियाज एक्सपोर्ट ट्रेड, **कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री**, खण्ड-XXVI, सं० 1, 3 जुलाई, 1946.
6. सुन्दरम, डा० लंका: इन्डिया एण्ड इन्टरनेशनल कॉन्फ्रेन्स ऑफ ट्रेड एण्ड इम्लायमेन्ट, **कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री**, खण्ड-XXVI, सं० 13, 25 सितम्बर, 1946.

7. सुन्दरम, डा० लंका: फ्यूचर आफ इन्डो-अमेरिकन इकॉनामिक रिलेशनस्, **कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री**, खण्ड-XXVI, सं० 21, 20 नवम्बर, 1946.
8. सुन्दरम, डा० लंका: थॉट्स ऑन इन्डियाज फ्यूचर कॉनस्टिट्यूशन—नीड फॉर एडिक्वेट पावर्स फार यूनियन सेन्टर, **कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री**, खण्ड-XXVI, सं० 24, 11 दिसम्बर, 1946.

लोक सभा वाद-विवाद:

1. 31 मार्च, 1953, का० 3390, 3391-92.
2. 12 मई, 1953, का० 6402-6407.
3. 13 मई, 1953, का० 6556-57, 6565.
4. 22 मार्च, 1954, का० 2670-2671.
5. 14 मई, 1954, का० 7461-64, 7469.
6. 22 फरवरी, 1956, का० 655.

भाग दो

उनके विचार

डा० लंका सुन्दरम द्वारा लोक सभा में दिए गए
कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण

2

योजनाबद्ध आर्थिक विकास*

पंचवर्षीय योजना

सदन के नेता का भाषण सुनते समय एक दो असाधारण भाषणों से मैं बहुत प्रभावित हुआ जो इस प्रतिवेदन को इस सभा में चर्चा के लिए प्रस्तुत करते हुए दिये गये थे।

सदन के नेता ने कहा कि ऐसी कोई धारणा नहीं है कि यह प्रतिवेदन सही है। उहेंने यह भी कहा कि प्रतिवेदन में विभिन मुदों पर कमियां निकालना बहुत सरल है। उन्होंने यह भी कहा कि इस देश में समाज को नैतिक और भौतिक रूप से ऊंचा उठाने के लिए तथा देश की अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन और विकास के प्रत्येक पहलू को प्रगति की तरफ ले जाने हेतु एक प्रकार से धर्मयुद्ध की भावना से काम करने की आवश्यकता है। सदन के नेता के एक और वक्तव्य ने मेरा ध्यान खींचा और वह यह कि सदन प्रतिवेदन के दूसरे भाग की तुलना में पहले भाग पर विचार करने के लिये अधिक समय निर्धारित करे। चूंकि मेरा विश्वास कम बोलने में है अतः मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहूंगा कि सदन के नेता द्वारा इस प्रतिवेदन के एक विशेष अध्याय का उल्लेख करने की बात से मैं सहमत नहीं हूं क्योंकि मेरे विचार से इससे इस योजना की कमियों का पता चलता है। मुझे बल्कि आश्चर्य है कि खाद्य जैसी महत्वपूर्ण और ज्वलन्त नीति के बारे में केवल $14^{1}/_{2}$ पृष्ठों में उल्लेख किया गया है। अध्याय में दी गई भारी भरकम सामग्री से अध्याय की महत्ता नहीं होती बल्कि इसमें दिये गए विषय को कितना महत्व दिया गया है इससे उस अध्याय की महत्ता है। मैंने परामर्श के तौर पर कहा है कि खाद्य समस्या के साथ इस प्रकार का व्यवहार इस देश की संपूर्ण योजना और विकास की कमियों को दर्शाता है।

जब योजना आयोग ने पांच छः सप्ताह पहले हमें अपनी राय देने के लिए आमंत्रित किया था तो खाद्य संबंधी यह विशेष अध्याय हमें उपलब्ध नहीं कराया गया था। मैं जिम्मेदारी के साथ यह कहना चाहता हूं कि मैं इस प्रश्न को किसी पक्षपात पूर्ण या दलगत भावना से नहीं उठा रहा हूं मैंने इस अध्याय का उल्लेख इस लिए किया है ताकि मैं सदन

*पंचवर्षीय योजना के बारे में सरकार के प्रस्ताव पर वाद-विवाद से, लोक सभा, 15 दिसम्बर, 1952, का० 2389-96

2162LS—3

के नेता द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से असहमति व्यक्त कर सकूं कि हमें उद्देश्यों पर अधिक ध्यान देना चाहिए न कि ब्यौरे पर। खाद्य संबंधी ग्यारहवें अध्याय से तैयार किये गये कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं। वर्ष 1946 से 1952 तक प्रत्येक वर्ष 2.25 मिलियन टन, 2.23 मिलियन टन, 2.84 मिलियन टन, 2.71 मिलियन टन, 3.13 मिलियन टन, 4.17 मिलियन टन और 3.90 मिलियन टन खाद्य पदार्थों की कमी थी और जिस पर सात वर्षों की अवधि में 750 करोड़ रुपये की कुल धनराशि व्यय हुई थी। अगर मेरे आंकड़े गलत हैं तो मैं यह चाहूंगा कि सही आंकड़े दिये जाएं। आगामी वर्षों में खाद्य पदार्थों के आयात के लिए लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं? मुझे यह पता चला है कि आगामी तीन वर्षों के दौरान, अर्थात् पंचवर्षीय योजना अवधि के शेष वर्षों में, प्रत्येक वर्ष लगभग 3 मिलियन टन खाद्य पदार्थों का आयात करने का लक्ष्य है।

मैं वित्त मंत्री द्वारा दी गयी शुद्धि को स्वीकार करने को तैयार हूं क्योंकि आंकड़े लगभग हैं जिनका प्रतिवेदन में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। ये कम भी हो सकते हैं। क्या मैं यह मान लूं कि ये दो मिलियन टन होगा? सम्भवतः तीन वर्षों में छः मिलियन टन और इस पर 300 करोड़ रुपये खर्च होंगे। मेरे विचार से यह अनुमान अधिक ग़लत नहीं होगा।

आगामी तीन वर्षों में इसके लिये कोई व्यवस्था नहीं है। चाहे आयात की मात्रा 2 मिलियन टन हो या $2\frac{1}{2}$ मिलियन टन हो और जिस पर लगभग 300 करोड़ रुपये या प्रथम पंचवर्षीय योजना अवधि के तीन वर्षों में संभवतः अधिक भी व्यय हो सकता है। मैंने इस बात का इसी कारण से उल्लेख किया है। मुझे अत्यन्त दुःख है कि योजना आयोग के प्रतिवेदन में खाद्य समस्या के साथ जो व्यवहार किया गया है। वह गैर-जिम्मेदाराना है।

यह बहुत कम है, अपर्याप्त है और हम सम्पूर्ण समस्या का आकलन करने के लिए इस सदन और देश को सहायक नहीं है क्योंकि मुझे भय है कि कहीं इस देश की सारी योजनायें और विकास योजनायें इससे समाप्त न हो जायें।

यह कहने के बाद, मैं एक या दो अति महत्वपूर्ण मुद्दे उठाना चाहता हूं जो कि इस विशिष्ट विषय से संबंधित हैं। मैंने पाया है कि इसमें कृषि के लिए 168 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है, बहु-उद्देश्यीय परियोजनाओं के लिए 226 करोड़ रुपये, विद्युत के लिए 127 करोड़ रुपये का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त लघु सिंचाई कार्यों के लिए 77 करोड़ रुपये का प्रावधान है। अन्य शब्दों में 2068 करोड़ रुपये में से लगभग 800

करोड़ रुपये इस विशिष्ट पहलू पर व्यय किए जायेंगे। विशेष रूप से मैं, इस सदन का ध्यान अध्याय 26 के पैरा· 42 की ओर दिलाना चाहता हूं जिसमें आप निम्नलिखित वक्तव्य पायेंगे जिसे मैं उद्धृत कर रहा हूं:

> "----------योजना में शामिल सभी परियोजनाओं के बारे में यह कहना ठीक न होगा कि इनका कार्य विस्तृत तकनीकी जानकारी प्राप्त करने और आर्थिक पहलू का सावधानीपूर्वक आकलन करने के पश्चात् ही किया गया है।"

मैं यह कहना चाहता हं कि कृषि और खाद्य समस्या के बारे में उचित दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है और न ही उसे सही दिशा प्रदान की गई है। यदि लघु सिंचाई कार्यों पर थोड़ा सा और अधिक धन व्यय किया जाता तो हमारी समस्यायें शीघ्र दूर हो सकती थीं। दुर्भाग्य से बहु-उद्देश्यीय परियोजनाओं के संदर्भ में जितना अधिक संभव हो सकता था उतना अधिक सामूहिक दबाव व दबाव की राजनीति का उपयोग किया गया है। क्यों? कुछ दिन पूर्व ही आपने कृष्ण-पन्नार परियोजना पर सदन के सभापटल पर प्रस्तुत प्रतिवेदन को पढ़ा होगा। मैं यहां किसी स्थानीय समस्या का जिक्र नहीं करना चाहता जिसका कि मुझे पूरा ज्ञान हो और उसे मैं राष्ट्रीय समस्या के रूप में भी प्रस्तुत नहीं करना चाहता। मैं सदन का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि बहु-उद्देश्यीय परियोजनाओं की सम्पूर्ण योजना का लाभ प्राप्त होने में दस अथवा 15 वर्ष लगेंगे। यदि मैं कोई भूल नहीं कर रहा हूं तो इस सदन में कई बार बहु-उद्देश्यीय परियोजनाओं को जिस प्रकार स्थापित किया गया है उसके बारे में गंभीर आरोप लगाये गए हैं। विशेषकर भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और अन्य कई आरोप लगाये गए हैं जिसमें धन की अपार हानि हुई है। यदि लघु सिंचाई योजनाओं पर अधिक ध्यान दिया जाता और उनके लिए अधिक धन आवंटित किया जाता और प्रत्येक ताल्लुक और प्रत्येक जिले को अधिक धन दिया जाता तो मुझे विश्वास है कि खाद्यान्न के मामले में कोई समस्या न रहती। मैं आगामी फसल के बारे में जानने को अत्यधिक उत्सुक हूं। इसके विपरीत बहु-उद्देश्यीय परियोजनाओं का फल प्राप्त होने में कई दशक लग जायेंगे और हमें भारी मात्रा में खाद्यान्न का आयात करना पड़ेगा जिसमें शायद योजना के शेष तीन वर्ष के दौरान तीन या चार सौ करोड़ रुपये व्यय करने पड़ेंगे।

एक या दो अन्य और छोटे मामले भी हैं। बहु-उद्देश्यीय कही जाने वाली कोसी, कृष्णा, चम्बल आदि परियोजनायें योजना में शामिल हैं। जिन पर लगभग 200 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान है जिसमें से योजना में केवल 40 करोड़ रुपये का वित्तीय प्रबंध किया गया है। मुझे पहले मसौदे का अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ था

क्योंकि योजना आयोग ने छह सप्ताह पूर्व मुझे परामर्श हेतु बुलाया था और मैंने पाया कि कई मामले एक दूसरे के अतिकायी हैं। कोई स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है। अन्य शब्दों में वित्तीय कार्य के मामले में कोई स्पष्ट मापदंड नहीं अपनाया गया है। व्यय के मुद्दों को एक दूसरे में मिलाने से योजना के मूल्य और दिशा में बदलाव आ जायेगा। मैंने सोचा था कि योजना की रूपरेखा के संबंध में आने वाले कुछ वर्षों में राजस्व की अधिकतम राशि को कम किया जायेगा।

अब मैं योजना आयोग की रिपोर्ट के अध्याय 4 के पैरा 10 को पढ़ रहा हूं:

> "योजना के लिए वित्तीय संसाधनों के आकलन के अनुसार जन विकास कार्यक्रम के लिए आवश्यक शेष 655 करोड़ रुपये बाह्य संसाधनों से जो कि जहां तक संभव होगा घाटे की वित्त व्यवस्था से जुटाये जायेंगे।"

मुख्य बात यह है कि देश के वित्तीय संसाधनों में जहां तक संभव था वित्तीय ढांचे में हर प्रकार का विनियोजन कर दिया गया है।

मैं वित्त मंत्री जी और श्री बंसल को चर्चा में हस्तक्षेप करने के लिए धन्यवाद देता हूं।

मैं यह नहीं भूला हूं कि इस योजना में करभार संतुलन के बारे में क्या लिखा है वरन् इस योजना में अधिकतम राशि की उपलब्धता की संभावनाओं की खोज की गई है; जिसके परिणामस्वरूप, में संभावित त्रुटियों और वित्तीय अंतर के बारे में चिंतत हूं कि वे योजना के कार्यान्वयन में बाधा न बनें।

मैं इस प्रश्न के एक और पहलू पर चर्चा करना चाहता हूं जो कि अति महत्वपूर्ण है। वह जन सहयोग के बारे में है जिसका उल्लेख मूल योजना के भाग दो में है। मेरे मन पर गलतफहमी थी कि देश में जो गतिशील दृष्टिकोण अपनाये जाने और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा लोक समर्पण की भावना प्रदर्शित करने तथा सौहार्दता और सहयोग की भावना को अपनाने का जो अभियान चलाया जा रहा है और उसके लिये जो तरीका अपनाया जा रहा है वह राष्ट्रीय भावना बन पायेगी या नहीं। इस रिपोर्ट में गोरवाला रिपोर्ट को उद्धृत किया गया है। शायद बाह्य स्रोतों से केवल इसी रिपोर्ट को उद्धृत किया गया है। परन्तु क्या किया गया है। भ्रष्टाचार, लोक प्रशासन में सुधार के बारे में गोरवाला रिपोर्ट एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट है। इस रिपोर्ट में अंतर्विष्ट प्रतिज्ञान नियमित कानून का अंग बनने चाहिये और उन्हें प्रशासनिक प्रक्रिया में भी शामिल किया जाना चाहिये।

परन्तु आज देश में वास्तविक स्थिति क्या है? यहां जन-सहयोग पर राष्ट्रीय सलाहकार

समिति का प्रावधान है और अब तक उसके लिये कुछ नहीं किया गया है। मैंने कई बार सार्वजनिक तौर पर यह कहा है कि तथाकथित भारत सेवक समाज, इसकी संरचना, इसके कार्मिक, जनजीवन के प्रति इसका दृष्टिकोण विभिन्न क्षेत्रों में विशेषकर समाज का राजनीतिक अंग और राजनीतिक दल दोषपूर्ण हैं। मैं इस मामले में अत्यधिक व्यथित हूं। वास्तव में, मैं इस विषय में चिंतित हूं क्योंकि प्रत्येक मामला नौकरशाही का शिकार हो जायेगा। जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर को अन्य उन कार्यों में लगाया जायेगा जिनके लिये वह संशय नहीं होगा।

इस रिपोर्ट के पैरा 2 में कई सुझाव दिए गए हैं। क्या दोहरा प्रशासनिक तंत्र बनाया जायेगा? क्या जन-सहयोग को सुनिश्चित करने के लिये बनाये गये अधिकारियों के नये सवर्गों को पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा। हमने देखा है कि योजना और विकास विशेषकर भारत सेवक समाज के संबंध में क्रियाकलापों को किस प्रकार कार्यान्वित किया गया है। इस देश में हाल ही में सामुदायिक परियोजनाओं का क्या परिणाम रहा है। यह सब कहते हुए मेरा दिल रोता है परन्तु मैं आज यह सब अवश्य कहूंगा।

मैं सदन के माननीय नेता से एक महत्वपूर्ण बात कहना चाहता हूं कि मैं उनसे देश के सभी लोगों से और जो उनके दल के लोग नहीं हैं उनसे यह आशा करता हूं कि वह उन्हें सहयोग देंगे। मुझे दुख है कि अभी तक ऐसा नहीं हो पाया है। यह एक दल का मामला नहीं है। इस देश को अवश्य आगे बढ़ना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी सहयोग दे सकता है उससे वह लिया जाना चाहिये। मुझे यह कहते हुए अत्यधिक दुख है कि ऐसा नहीं हो रहा है। सदन के माननीय नेता और उनके जैसे अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा दिए गए वक्तव्य सदन की कार्यवाही के रिकार्डों तक ही सीमित रह जाते हैं। मैं चाहता हूं कि उन्हें कार्यरूप में परिणित किया जाये। मैं, समाज के सभी वर्गों से चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल के समर्थक हों, अपील करता हूं कि वे सहयोग दें ताकि देश आगे बढ़ सके। अन्यथा करियप्पा या अन्य किसी ऐसे व्यक्ति को कार्य सौंपे जो उसे आवश्यक गति प्रदान कर सके। इस पर पूरा ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है कि योजना का कार्य पूरा हो सके। मैं करियप्पा के क्षेत्र का रहने वाला हूं। हम दोनों एक दूसरे के 1400 मील दूर के रहने वाले है। मेरा पूरक मुद्दा यह है कि यह योजना सफलतापूर्वक लागू हो। परन्तु मुझे इसकी सफलता में संदेह है, हममें वे बातें ही नहीं हैं क्योंकि जैसाकि सदन के नेता ने अपने भाषण में जो जन सहयोग की बातें कही हैं वह इसे प्राप्त नहीं होगा। मैं अब केवल यह आशा करता हूं कि कुछ ऐसे प्रयत्न किये जायेंगे जिससे एकीकृत राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया जा सके अन्यथा यह सब 2068 करोड़ रुपये बेकार हो जायेंगे और

इसका लाभ केवल उन व्यक्तियों को पहुंचेगा जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हुए हाल के चुनावों में जीत कर सत्ता में आये हैं।

3

आर्थिक समस्यायें*

I

खाद्य समस्या

मुझे खुशी है कि कुछ सप्ताह पूर्व खाद्य मंत्री ने जो उल्लेखनीय वक्तव्य जारी किये थे उनके फलस्वरूप उत्पन्न जन-भ्रान्तियों को दूर करने के लिये इस वाद-विवाद का आयोजन किया गया है। यह वाद-विवाद देश के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न भ्रांतियों-नियंत्रण संबंधी वर्तमान और भावी स्थिति विशेषरूप से खाद्य नियंत्रण संबंधी स्थिति को लेकर उत्पन्न भ्रांतियों को दूर करने में सहायक होगा। खाद्य मंत्री दवारा जारी वक्तव्य और प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा उस पर दिये गये स्पष्टीकरण को देखते हुए मेरे विचार से दो-तीन बहुत महत्वपूर्ण संकल्पनाएं उभरती हैं।

सर्वप्रथम, राज्य सरकारें किसी भी खाद्य पदार्थ को और कहीं से भी खरीदने के लिये स्वतंत्र हैं। दूसरी बात प्रत्येक राज्य में उसके क्षेत्र के अन्तर्गत निरंतर खरीद की समस्या से जुड़ी हैं और तीसरे चावल अथवा गेहूं के बारे में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है जबकि प्रधानमंत्री ने कहा है कि बाजरे के मामले में कुछ थोड़ा परिवर्तन किया जा सकेगा।

मैं इस बात से संतुष्ट नहीं हूं कि खाद्य मंत्री और प्रधानमंत्री के वक्तव्यों से अपना उक्त तीन संकल्पनाओं से इस समस्या का पूरा समाधान हो सकेगा। क्योंकि मुझे विश्वास है कि आज इस मसले के तीन पहलुओं के संबंध में मूलभूत जानकारी हासिल करना अत्यंत आवश्यक है। क्या हम अगले वर्ष आयात करने जा रहे हैं अथवा नहीं? यदि हां, तो कितना और फिर प्रधानमंत्री ने कुछ समय पहले जो घोषणा की थी कि 1951 के बाद खाद्य पदार्थों का कोई आयात नहीं किया जायेगा, उसका क्या परिणाम रहा।

योजना आयोग की रिपोर्ट के अनुसार हम अगले साढ़े तीन वर्षों में खाद्य पदार्थों के

---

*खाद्यान्न की स्थिति के बारे में सरकार के प्रस्ताव पर वाद-विवाद से, लोक सभा, 17-18 नवम्बर, 1952, कॉ० 711, 720, 748-53

मामले में आत्मनिर्भर हो जाएंगे। खाद्य पदार्थों, विशेषरूप से गेहूं के अतिरिक्त खाद्य पदार्थों के आयात को किस प्रकार विनियमित किया जाएगा ताकि सरकार की संशोधित खाद्य नीति विशेषरूप से दक्षिण भारत में लागू की जा सके?

खाद्य मंत्री ने अपने वक्तव्य में कहा है कि इस मुद्दे के संबंध में भारत सरकार के तीन उद्देश्य हैं — वे हैं अधिक खाद्य उत्पादन, उचित वितरण और किसी राज्य में कोई समस्या उत्पन्न होने पर भारत सरकार के पास उसकी सहायता के लिए बफर स्टॉक की व्यवस्था होना। ऐसा करते हुए खाद्य मंत्री यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि अधिक अन्न उपजाओ अभियान से देश को लाभ पहुंचा है। मुझे खेदपूर्वक यह कहना पड़ रहा है कि उन्होंने जो आंकड़े दिये हैं वे उनकी बात की पुष्टि नहीं करते हैं। मद्रास राज्य के सम्बन्ध में यह प्रदर्शित किया गया कि वहां पर खाद्य उत्पादन क्षेत्र में दस लाख एकड़ की कमी हुई है। मैंने पिछले महीने योजना आयोग को देश में हमारे क्षेत्र मद्रास राज्य में चलाये जा रहे अधिक अन्न उपजाओ अभियान के बारे में बताया था मैंने पिछले महीने मेरे जिले के कलेक्टर द्वारा मुझे भेजा गया परिपत्र योजना आयोग को दिखाया था जिसमें मुझसे पदेन सदस्य बनने और जिला खाद्य समिति, एक सांविधिक समिति की बैठक में उपस्थित रहने को कहा गया था और तब मैंने उन्हें यह बताया था कि वहां सम्मेलन के लिये कोई कार्यसूची ही नहीं है। अधिक अन्न उपजाओ अभियान के दस वर्ष पूरे होने के बाद भी, चुनाव के पश्चात यह पहली बैठक बिना कार्यसूची के थी जिसके फलस्वरूप मुझे यह मानने पर मजबूर होना पड़ा कि हम उस स्थिति में नहीं पहुंचे हैं जबकि अधिक अन्न उपजाओ अभियान को गंभीरता से लिया गया हो वस्तुतः एक ही राज्य में उपज क्षेत्र दस लाख एकड़ तक कम होने से इस बात की ओर दुखद संकेत मिलता है हमारी कृषि अर्थव्यवस्था नियंत्रण से बाहर हो गई है।

मैं देश के उन गिने चुने लोगों में से हूं जो पिछले पांच-छह वर्षों से यह आवाज उठा रहे हैं कि नकदी फसलों की इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये कुछ किया जाना चाहिए। मैं पूरी जिम्मेदारी के साथ विशेषरूप से अपने जिले के संबंध में यह कहता हूं। पिछले दो-तीन वर्षों के दौरान इन कमी वाले क्षेत्रों को, जो पहले देश के उस भाग में अन्न उपजाने के लिये सुरक्षित रखे जाते थे, वहां अब गन्ना, पटसन और तम्बाकू जैसी अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है उदाहरण के लिये यह क्षेत्र गैर-खाद्य क्षेत्र की फसलों के लिये रखा गया है। वस्तुतः भारत सरकार जिस प्रकार इस संबंध में कार्यवाही कर रही है और विभिन्न सरकारें नकदी फसलों की प्रवृत्ति को नहीं रोक पा रही हैं, उसे मैं गंभीरता

से लेता हूं। यदि नकदी फसलों की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को न रोका गया तो खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं की जा सकती । मुझे यकीन है कि मेरे कुछ मित्र मुझे यह बताएगें कि क्या इसे राजनैतिक दर्शन से जोड़ना चाहिए। मैं यह स्वीकार करने को तैयार हूं कि इस वक्तव्य के पीछे कोई नीति अथवा दर्शन नहीं छिपा है। यह वस्तुस्थिति है और इस देश की खुशहाली के लिये अत्यधिक महत्व की बात यह है कि यदि देश में नकदी फसलों के उत्पादन के विस्तार को यदि नहीं रोका गया तो अब तक किये गये और प्रस्तावित आयोजना और विकास कार्यों का देश की जनता के लिये कोई उपयोग नहीं होगा।

मुझे खाद्य मंत्री से यह सुन कर आश्चर्य हुआ कि उन्होंने यह दावा किया कि इस वर्ष जून में मद्रास में खाद्यान्नों पर नियंत्रण हटाने से मूल्यों में कमी आई है। वस्तुतः मेरे एक दो अन्य मित्र विशेषरूप से सरदार लाल सिंह ने इस मुद्दे को स्पष्ट किया है। जून के बाद खाद्यान्नों की मूल्य सूची, जो हमें कल रात उपलब्ध कराई गई इस प्रकार है। विशाखापतनम में चावल का प्रतिमन मूल्य 17 रुपये 4 आने 6 पाई था। आज बाजार मूल्य 23 रुपए है। एलुरु (आंध्र प्रदेश) में यह मूल्य 16 रुपए 6 आने से बढ़ कर अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में न्यूनतम मूल्य 23 रुपए हो गया। मैंने एक अथवा दो स्थानों को छोड़ कर स्थिति का जायजा लिया और देखा कि मूल्यों में वृद्धि हो गई है। मैं समझता हूं कि आज के बाजार मूल्य की तुलना गत वर्ष की इसी अवधि के काला बाजार मूल्य से करना इस स्थिति के लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण होगा क्योंकि बाजार पर नियंत्रण रहने की स्थिति में अत्यधिक मूल्य होने के बावजूद शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के सभी राशनकार्डधारकों को खाद्यान्नों की एक न्यूनतम सुनिश्चित मात्रा की सप्लाई होती थी। मैं इस बात से इंकार नहीं करता हूं कि लोगों ने अपने राशन की पूर्ति के लिए काला बाजार से खरीददारी की लेकिन मुख्य बात, जिसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया, यह है कि नियंत्रित मूल्य पर खाद्यान्नों की न्यूनतम सप्लाई सुनिश्चित होती थी जिसके परिणामस्वरूप यह कहना कि गत वर्ष के मूल्य 50 रुपए की तुलना में आज का मूल्य केवल 23 रुपए हैं, किसी प्रकार से विशुद्ध तुलनात्मक स्थिति नहीं है।

मेरा निश्चित रूप से यह विश्वास है कि जब तक राशनिंग व्यवस्था को भली भांति एवं समुचित रूप से नहीं चलाया जाता तब तक केवल मूल्य निर्धारित करने से ही समस्या का समाधान नहीं होगा। अन्ततः मूल्यों को, कारगर मूल्यों को नियंत्रण करने की एक प्रक्रिया होनी चाहिए और यह नियंत्रण पूरी तरह राशनिंग के सवाल से तथा राशनिंग व्यवस्था को भलीभांति लागू करने से जुड़ा हुआ है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं कोई सिद्धान्त

स्थापित करने हेतु खाद्यान्न नियंत्रण अथवा राशनिंग के लिए प्रतिबद्ध नहीं हूं। मुझे इस बात की भी जानकारी है कि अब तक अत्यधिक नियंत्रण लगाने से कई प्रकार की पेचीदगियां पैदा हो गई हैं तथा इसमें निहत स्वार्थ और अड़चने आ गई हैं। लेकिन एक बात मैं बहुत ही स्पष्ट कर देना चाहता हूं अर्थात मैंने अपनी आंखों से यह देखा है कि आन्ध्र प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में गत तीन वर्षों के दौरान, विशेषकर वे लोग, जो कृषक नहीं है उदाहरणार्थ कृषि मजदूर, खाद्यान्न खरीदने में असमर्थ हैं चाहे उनका मूल्य कुछ भी रहा हो और बाजार मूल्य काफी अधिक रहे। जिसके परिणामस्वरूप चाहे यह सांविधिक राशनिंग हो अथवा असांविधिक राशनिंग अथवा शहरों में हो अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या काफी जटिल है। खाद्यान्न जनता को पूर्णतया तथा संतोषजनक न्यूनतम मूल्यों पर, जिसका कि जनता भुगतान कर सके, उपलब्ध कराये जाने चाहिए। मुझे उम्मीद है कि हमारे खाद्य मंत्री द्वारा घोषित तथा प्रधान मंत्री द्वारा समर्थित खाद्य योजना में इन तथाकथित संशोधनों के परिणामस्वरूप इस मुद्दे की अनदेखी नहीं की जाएगी। अन्यथा मैं समझता हूं कि इसकी अनदेखी करने से शहरी तथा ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों के लोगों के लिए संभवतः भारी क्षति होगी।

दूसरी बात जिस पर मैं जोर देना चाहूंगा वह यह है कि क्या इस देश में खाद्यान्नों—गेहूं तथा चावल की सप्लाई कम है? क्या जनसंख्या में वृद्धि हुई है? क्या मूल्यों में वृद्धि हुई है अथवा नहीं हम इन सभी तथ्यों को किस प्रकार नियंत्रित करेंगे? नियंत्रण हटाकर नहीं। वास्तव में इस संबंध में मेरा दृढ़ विश्वास है कि बिना सोचे समझे नियंत्रण हटाने की वकालत करके भारी मनोवैज्ञानिक क्षति की गई है।

मैं समझता हूं कि नियंत्रण हटाने के पीछे कोई राजनीति थी। जोनल प्रणाली इस प्रकार व्यवस्थित की गई कि जनता तथा उसके क्षेत्रीय हितों को ध्यान में रखा जा सके। उत्तर से दक्षिण को आते हुए — मैं उत्तर से प्रारम्भ करता हूं— श्रीकाकुलम, विशाखापतनम और पूर्वी गोदावरी एक जोन है। दूसरा जोन पश्चिम गोदावरी कृष्णा-गुन्टुर को इसमें से हटा दिया गया था तथा इसमें नेल्लोर को शामिल किया गया था—इसमें मद्रास सिटी को भी जोड़ दिया गया था। गुन्टुर को रायलसीमा से जोड़ा गया। यह जोनल योजना दुर्भाग्यपूर्ण और अल्पवस्थित तरीके से तैयार की गई मैं जानता हूं कि ऐसा क्यों किया गया। ऐसा इसलिए किया गया कि गोदावरी और कृष्णा पट्टी से फालतू अनाज को मद्रास शहर और साउथ ले जाने के लिए किया गया था। मैं वहां सत्रों के दौरान दो महीने तक रहा हूं। इन जिलों की यात्रा की, और मद्रास तथा दक्षिण भारत के होटल मालिकों द्वारा जिस तरीके से इन क्षेत्रों से चावल उठाया जा रहा था वह एक अजीबोगरीब तरीका था जिसे मैं पूर्णतया

अभिव्यक्त नहीं कर सकता। मैं कहता हूं कि इसमें भी राजनीति प्रवेश कर चुकी है और मैंने इसकी चेतावनी दी है। खाद्यान्न के मामले में कभी राजनीति नहीं हो सकती। यह किसी पार्टी विशेष का सवाल नहीं है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत सरकार खाद्यान्नों के मानदण्डों को कायम रखेगी।

मद्रास का प्रतिनिधित्व करने के कारण क्या मैं एक सवाल कर सकता हूं? क्या मद्रास राज्य में खाद्यान्न उत्पादन के अन्तर्गत दस लाख एकड़ भूमि की कमी हुई है। तो भारत सरकार खाद्यान्न सप्लाई जारी रखने पर सहमत क्यों है? और इससे भारत सरकार को पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत खाद्यान्न के मामले में आत्म-निर्भरता अभियान को चलाने में किस प्रकार सहायता मिलेगी? मैं समझता हूं कि इस संबंध में अनेक प्रश्न जुड़े हुए हैं और मैं इन प्रश्नों को यह स्पष्ट करने के लिए उठा रहा हूं कि यह मामला राजनीति से अछूता नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप देश के अन्दर समस्या पैदा हो गई है। मुझे प्रसन्नता है कि खाद्य मंत्री और प्रधान मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य के परिणामस्वरूप पहले की आंशकाएं समाप्त हो जायेंगी।

II
श्रमिक समस्यायें*

देश के लोग इस तथ्य को जानते हैं कि श्री वी०वी० गिरि एक ट्रेड यूनियनिस्ट के रूप में अपने तीस वर्षों के अनुभव के पश्चात् ही इस उच्च पद पर पहुंचे हैं। देश के लोग श्रम मंत्री द्वारा पद ग्रहण करने के बाद उनके द्वारा उठाये गये शुरुआती कदमों के बारे में भी निगरानी रख रहे हैं। मुझे बीस वर्ष पूर्व का वह दिन याद आता है जब मेरे माननीय मित्र ने आन्ध्र प्रदेश में रेल मजदूरों की हड़ताल में मुझे शामिल किया था। भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के वे दिन शांतिपूर्ण थे और योजना के अनुसार कोई हड़ताल करना या चलाना लोगों की नजरों में महत्वपूर्ण होता था। मैं यह मानता हूं कि स्वतंत्र भारत में आज इस समस्या विशेष पर नये सिरे से विचार करना है। मुझे पिछले कुछ वर्षों के दौरान श्रम मंत्री के एक कनिष्ठ सहयोगी के रूप में उनकी गतिविधियों को नजदीक से देखने का सुअवसर मिला है। जब उनके साथ इस पद का झंझट नहीं था तब तक मेरे माननीय मित्र श्रमिकों के अधिकारों के प्रखर प्रवक्ता थे और अब उन अधिकारों को संरक्षण देने की ओर भी ज्यादा आवश्यकता हो जाती है। लेकिन मैंने देखा है कि जब कभी वह पदासीन हुए हैं वे कुछ नुस्खे सुझाने की सहज प्रवृति अपना लेते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व जब श्रम मंत्री मद्रास सरकार में श्रम मंत्री थे तो उन्होंने त्रिचिरापल्ली में एक प्रसिद्ध भाषण दिया था और यदि मैं उनके साथ अन्याय न करूं तो, उस भाषण का प्रभाव श्रमिकों के हड़ताल के अधिकार को सीमित करता था। मुझे आशा है कि यह उस की कोई विद्वेषपूर्ण व्याख्या नहीं है कि उन्होंने श्रम मंत्री के रूप में जब वह वक्तव्य दिया तो उसकी क्या प्रतिक्रिया थी । मैं इस समय उस वक्तव्य की बात छोड़ता हूं और श्रम मंत्री द्वारा अभी हाल ही में दिये गये वक्तव्य पर आता हूं। मैं "फ्री प्रेस ऑफ इंडिया" से उद्धृत कर रहा हूं और यह उद्धरण इस समाचारपत्र में ही मुद्रित हुआ है। यह कहा गया है कि यह भाषण आल इंडिया मैन्यूफैक्चरर्स आर्गेनाइजेशन को संबोधित करते वक्त 2 जून को बम्बई में मेरे माननीय मित्र द्वारा दिया गया था। मैं विधान में ज्यादा विश्वास नहीं करता और मैं दोनों अर्थात् नियोजक और श्रमिकों के बीच आपसी सूझबूझ और

*लोकसभा में 19 जून, 1952 को श्रम मंत्रालय के लिए अनुदानों की मांगों (1952-53) पर चर्चा से उद्धृत, कार्य० 2173—80

समझौतों में ज्यादा विश्वास रखता हूं। मेरे विचार में यह एक बहुत ही खतरनाक सिद्धांत है। यदि श्रम मंत्री के भाषण को सही-सही छापा गया है तो मेरे मतानुसार, यह जिन्होंने पिछले पच्चीस वर्षों से देश में श्रम संबंधी कानून की ओर अत्यधिक ध्यान दिया है, इस देश में श्रमिक वर्ग के लोगों के आन्दोलन की समस्या के प्रति भारत सरकार के स्वीकृत सिद्धांतों के दृष्टिकोण से उनका अलग हटना है।

मैं इस समस्या का हवाला क्यों दूं? मैं अपनी बात यथासम्भव संक्षेप में कुछ उन घटनाओं का विश्लेषण करके स्पष्ट करूंगा जो इस देश में चारों ओर हो रही है। मैं औद्योगिक विवाद अधिनियम के क्रियान्वयन का संदर्भ देना चाहता हूं।

स्वयं एक मजदूर नेता होने के नाते, मुझे एक औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष ग्यारह महीने के लम्बे समय तक उपस्थित होने का अवसर मिला था। मुझे विवाद या कम्पनी या मजदूर संगठन का नाम बताने की आवश्यकता नहीं है—यदि इसकी आवश्यकता हुई तो मैं यह बताने के लिए तैयार हूं। मैं 17 जनवरी, 1952 को विजयवाड़ा में औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित किये गये एक आदेश के पैरा 2 से उद्धरण दे रहा हूं।

"सरकार ने इसका उल्लेख 28 जुलाई, 1951 को किया था और इसे 1 अगस्त, 1951 को प्राप्त किया गया था। वक्तव्य दर्ज करने के लिए नोटिस उसी दिन जारी किये गये। संगठन (अर्थात् मजदूर संगठन) ने अपने वक्तव्य 29 अगस्त, 1951 को दर्ज कराये। प्रबंधकों ने सुनवाई का तीन बार स्थगन किया और 19 अक्तूबर, 1951 को अपना उत्तर दिया (अर्थात् औद्योगिक न्यायाधिकरण के वास्तव में प्रारम्भ होने के लगभग तीन माह पश्चात्, उस तारीख से, लेखे प्रस्तुत करने के लिए कई बार समय लिया गया और अब तक भी कम्पनी के बही खाते प्रस्तुत नहीं किये गये हैं....." अंत में न्यायाधिकरण द्वारा कहा गया है—मैं आदेश के वास्तविक शब्दों को पुनः उद्धृत करता हूं।

"कम्पनी के इस दृष्टिकोण से श्रमिक संगठनों में कटुता पैदा हुई है।"

आप देश के कानून के अंतर्गत नियुक्त न्यायाधिकरणों के कार्यकरण के दुरुपयोग की अनुमति क्यों देते हैं?

श्रम मंत्री द्वारा बम्बई में जिस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने को कहा गया है उसका निहितार्थ खतरनाक होगा। पिछले तीस वर्षों के दौरान यह स्वीकार किया गया है कि, जहां

तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन जिसके हम पक्षकार हैं, का संबद्ध है, मजदूर कमजोर सहभागी है। मजदूरों की अपनी सुरक्षा कराने का अधिकार है। अन्यथा सांविधिक पुस्तक में सम्मिलित अन्य ये सभी अधिनियम न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, बालक नियोजन अधिनियम, कारखाना अधिनियम, माध्यस्थन अधिनियम आदि का कोई अर्थ ही नहीं होगा। इसलिए मैं माननीय श्रम मंत्री से यह पूछना चाहता हूं कि वे स्पष्ट बतायें कि क्या भारत सरकार की मजदूरों संबंधी नीति में कहीं कोई बदलाव है? यदि इसमें कोई परिवर्तन है, तो मुझे विश्वास है कि दोनों ही श्रम तथा पूंजी अर्थात् नियोक्ता सरकार के प्रति अपने विचारों और प्रवृत्ति का पुनर्समायोजन करेंगे। चूंकि मैं इस बात से सहमत हूं कि यदि कोई परिवर्तन है, तो इस संबंध में स्थापित त्रिपक्षीय तंत्र औद्योगिक और श्रम संबंधी प्रश्नों के समाधान के लिए त्रिकोणीय दृष्टिकोण समाप्त हो जायेगा।

औद्योगिक विवाद के इस प्रश्न को लेकर, मैं औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 7 की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। न्यायाधिकरणों का कार्यकरण ऐसा रहा है कि श्रमिकों के लिए प्रश्नाधीन विवादों के शीघ्र निपटान की सम्भावना बहुत ही कम रहती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 7 में इन न्यायाधिकरणों में उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों को नियुक्त करने का प्रावधान है। मुझे ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला है—बम्बई में बैंक न्यायाधिकरण को छोड़कर—जहां पर अखिल भारतीय राष्ट्रीय आधार पर औद्योगिक न्यायाधिकरणों को उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सहायता दी गई हो। मैं इसका एक कारण से उल्लेख कर रहा हूं अर्थात् श्रम मंत्री महोदय जब हाल ही में बम्बई में थे तो उनको कतिपय नियोक्ताओं के हितों की ओर से एक ज्ञापन दिया गया था कि उक्त अधिनियम की धारा 33 को नहीं हटाया जाये और यह कि वास्तव में इसे सुदृढ़ किया जाना चाहिए। अर्थात् वहां पर अपीलीय न्यायाधिकरण होने चाहिए—आदि; जबकि यदि मैं इस देश की स्थिति की गलत व्याख्या न करूं तो सभी उत्तरदायी श्रमिक संगठन इस अपीलीय न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार को समाप्त करना चाहता है। इसका कारण यह बताया गया है कि यह प्रक्रिया जटिल और महंगी हो जाती है और इससे न्याय नहीं मिलेगा जिसके लिये श्रमिक हकदार हैं और यह यथाशीघ्र मिलना चाहिए। मैं यह आशा करता हूं कि माननीय श्रम मंत्री औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 7 और 33 में अन्तर्निहित अर्थों की जांच करायेंगे और उन निर्णयों पर पहुंचेंगे जो श्रमिकों के हितों के विरुद्ध नहीं है।

मैंने अभी हाल ही में यह सुना है कि ऐसी ही एक अन्य बात हुई है कि श्रम मंत्री द्वारा निर्णय लिया गया है कि मजदूर संघों और श्रमिक संबंधों सम्बन्धी विधेयकों को इस

सत्र में सदन में नहीं लाया जायेगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि उनकी मंशा क्या है। यदि वे इन विशिष्ट विधेयकों को जिसके संबंध में देश में पिछले कई महीनों से अत्यधिक वाद विवाद रहा है। सदन में नहीं लाना चाहते हैं तो बतायें। मुझे पूरा विश्वास है कि प्रत्येक सदस्य उनका साथ देगा।

जहां तक न्यूनतम मजदरी कानून विशेषकर कृषि श्रम कानून का संबंध है न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 इस अधिनियम के संलग्न अनुसूची भाग-दो भारत सरकार की सामाजिक नीति, अर्थात् कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी विधान का क्रमिक और उत्तरोत्तर प्रयोग का एक बहुत ही महत्वपूर्ण यंत्र है। मैं यह जानना चाहूंगा कि मेरे माननीय मित्र श्रम मंत्री इस दिशा में किस प्रकार कार्य कर रहे हैं, क्योंकि जैसाकि मैंने पहले कहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कतिपय मुद्दों पर निश्चय कर लिया है और उनके संबंध में यह शीघ्र ही कतिपय कार्यवाही करने जा रहे हैं।

मैं औद्योगिक और सामाजिक कल्याण के इस प्रश्न से संबंधित कतिपय तथ्य और आंकड़ों का विश्लेषण करना चाहूंगा क्योंकि मैं इस देश की श्रमिक समस्याओं के बारे में भारत सरकार की नीति के पूर्ण रूप से पुनः अनुकूलन किये जाने की आवश्यकता में विश्वास करता हूं। मार्च, 1952 के भारतीय श्रमिक गजट के अनुसार हड़ताल पर जाने वाले श्रमिकों और कार्य दिवसों की हानि की संख्या में उत्तरोत्तर रूप से कमी हुई है। मैं उनका नीचे ब्यौरा दे रहा हूं:—

1939	50	लाख	श्रमिक दिवसों	की हानि
1946	127	लाख	,,	,,
1948	78	लाख	,,	,,
1949	66	लाख	,,	,,
1950	128	लाख	,,	,,
1951	35	लाख	,,	,,

इससे क्या प्रतीत होता है? श्रमिक संघवादी के रूप में मेरे विचार से मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् देश में श्रमिक अधिक उत्तरदायी हो गये हैं और नियोक्ता और सरकार दोनों के व्यवहार के प्रति वे अधिक प्रति संवेदी रहे हैं। इस देश में अनुपस्थिति का विश्लेषण यहां दिया गया है। वे चार शीर्षों के अंतर्गत दिये गये हैं।

लोहे और इस्पात उद्योग में अनुपस्थिति का प्रतिशत वर्ष 1948 में 14.3 से घटकर जनवरी, 1952 में 10% हो गया है। सीमेंट उद्योग में वर्ष 1947 में 12.2 प्रतिशत से

कम होकर इस वर्ष जनवरी में 10.2 प्रतिशत हो गया है। माचिस उद्योग में 1947 में 12.4 प्रतिशत से गिरकर इस वर्ष जनवरी में 8.4 प्रतिशत हो गया है और अंत में आयुद्ध कारखाने में वर्ष 1947 में 10.6 प्रतिशत से कम होकर इस वर्ष के प्रारम्भ में 7.8 प्रतिशत रह गया है।

अंत में मैं कोयला उद्योग को लेता हूं। भारत सरकार की मार्च, 1952 के श्रम गजट से एक पैरा दिया गया है इसमें बताया गया है कि कोयला उद्योग में श्रम उत्पादन 1950 में .33 से बढ़कर 1951 में 0.34 हो गया है।

जहां तक औद्योगिक विवादों, अनुपस्थिति और श्रम उत्पादकता का संबंध है, ये सपष्टतया यह दर्शाते हैं कि आज भारत में श्रम जुझारू हैं और वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति सजग हैं और यह कि वे उन अधिकारों के प्रति पूर्णतयाः सजग हैं। यह सम्मान के साथ समझौता करने के लिए तैयार हैं। इस देश में श्रम स्थिति का उचित "हैंडिलिंग" आज समय की आवश्यकता है और मुझे पूरी आशा है कि श्रम मंत्री श्रमिकों के अधिकारों के लिए व्यवहारिक विधायी तंत्र की सहायता की आवश्यकता को नहीं छोड़ेगें। अन्त में, मैं उस दिन की राह देख रहा हूं जब लाभ में भागीदारी और श्रमिक-सहभागिता राज्य-नीति की मूलाधार होंगी, जिनके अभाव में हम इस देश में औद्योगिक और सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में वांछित क्रान्ति अथवा गति नहीं ला सकते। मैं उत्तरदायित्व की भावना से यह बात कह रहा हूं तथा अवसर की गम्भीरता को समझ रहा हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि भारत सरकार इन मुद्दों के बारे में शीघ्र ही संसद में आवश्यक विधेयक पेश करेगी। मैं आशा करता हूं कि मेरे माननीय मित्र, श्रम मंत्री इस समस्या पर अन्य समस्याओं की अपेक्षा अधिक ध्यान देंगे।

पिछले 25 वर्षों के दौरान मुझे श्रमिक-नेता के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। वहां मुझे श्रमिक आन्दोलन की अगुआई करने वाले श्रमिक संगठनों में एकता का अभाव देखने को मिला। जिन श्रमिक संगठनों से मैं सम्बद्ध था, उनमें से एक में मुझे फरवरी, 1952 में हड़ताल का नेतृत्व करने का सौभाग्य मिला था तथा शिपयार्ड की वह हड़ताल पूर्णरूपेण सफल रही थी। मैं उस श्रमिक संगठन का अध्यक्ष हूं उस हड़ताल के परिणामस्वरूप हमें भारत सरकार से 9 लाख रु० की धनराशि का भुगतान मिला मैं समस्त श्रमिक संगठन के सदस्यों से 5 वर्षों के लिए श्रमिक संगठन के मोर्चे पर रोक लगाने का निवेदन करने का प्रयास कर रहा हूं, जिसके अभाव में मेरे विचार से, सरकार द्वारा चाहे कुछ भी किया जाये, अथवा न किया जाये, हम औद्योगिक उत्पादन को और आगे नहीं बढ़ा सकतें हैं। अपनी यूनियनों में मैंने इसे एक ऐसा मुद्दा, एक ऐसा सिद्धान्त

बनाया था जिसे किसी भी परिस्थिती में बदला नहीं जा सकता, जैसे कि राजनैतिक आधार पर इसे नहीं बदला जा सकता। मैं कई वर्षों तक कांग्रेस में रहा। श्री राजभोज ने "इन्टक" के स्वरूप-निर्माण में योगदान दिया है। मैं उस मुद्दे को अधिक विस्तार नहीं देना चाहता। मैं देश के किसी भी प्रकार के श्रमिक संगठन की आलोचना नहीं करना चाहता। चार-पांच ऐसे संगठन हैं जो देश में श्रमिक आन्दोलन का अगुआ होने का दावा करते है। मैं चाहता हूं कि वे श्रमिकों को आगे बढ़ने में तथा उन्हें उन लाभों को दिलाने में सहायता पहुंचायें, जिनके वे हकदार हैं और दो वर्ष पूर्व बम्बई में कपड़ा मिलों की उस हड़ताल की हार को न दोहरायें, जो न तो नियोक्ता की ताकत से और न ही भारत सरकार अथवा बम्बई सरकार बन्दूकों से वरन् हमारे देश के श्रमिक आन्दोलन में एकता के अभाव के कारण टूट गई थी।

नीति संबंधी मामले

निर्यात-आयात नीति और औद्योगिक नीति

सभा ने वाणिज्य मंत्री श्री कमरिकर का बहुत ही दिलचस्प भाषण सुना जिसमें उन्होंने विवाद में अब तक उठाए गए मुद्दों में से कुछ मुद्दों का उत्तर देकर अपना कौशल दिखाया। उन्होंने इस सभा और राष्ट्र को 1947 की स्थिति पर दृष्टि डालने और तब आगे की तरफ देखने को कहा। उन्होंने कहा कि उन्होंने कई आम प्रस्ताव रखे हैं। उन्होंने आयात संवर्धन के तरीकों के बारे में बताया। यहां कुछ तथ्य हैं जो 'जर्नल आॅफ इण्डस्ट्री एंड ट्रेड' में प्रकाशित थे और मुझे देखने को मिले। ये तथ्य उनके ही मंत्रालय द्वारा मार्च में 'जर्नल आॅफ इण्डस्ट्री एंड ट्रेड' में प्रकाशित किए गए थे। पृष्ठ-415 में 'बेल्टिंग' सहित सभी प्रकार की मशीनों के आयात की दुःखद कहानी है। उसमें प्रकाशित आंकड़े इस प्रकार हैं:—

1948-49	81.56 करोड़ रुपए
1949-50	105.51 करोड़ रुपए
1950-51	93.00 करोड़ रुपए
1951-52	104.31 करोड़ रुपए
1952-53	87.87 करोड़ रुपए

अप्रैल-अक्तूबर, 1953 के आंकड़े 42.72 करोड़ रुपए हैं।

मैं समझता हूं कि वाणिज्य मंत्री ने जो व्यापक परिणाम चाहे थे, उन्हें अपने पास रखा होगा। मैंने केवल एक मामले का उदाहरण दिया है क्योंकि मेरे पास इसके आंकड़े थे। इस तरह हमारा पूंजीगत माल अथवा बड़े उद्योगों में मशीनरी नहीं बदली गई और वे इससे वंचित रह गए और मैं पुनः दोहरा रहा हूं कि यह आंकड़े मंत्रालय के नाम पर जारी किए गए थे। मैं केवल उसी वक्तव्य के बारे में बोल रहा हूं जो मशीनरी के लिए व्यापार संवर्धन के बारे में वाणिज्य मंत्री ने रखा था और यह रिकार्ड भी है। परसों वाद-विवाद के प्रारंभ में मैंने औपचारिक रूप से आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया था कि अन्य सभाओं की तरह इस सभा की परम्परा रही है कि वाद-विवाद पर चर्चा की

*लोकसभा में 14 अप्रैल, 1954 को वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के लिए अनुदानों की मांगों (1954) पर चर्चा से उद्धृत, का॰ 4739-4750

शुरूआत कटौती प्रस्तावों, जिनकी सूचनाएं केवल विपक्ष ही देता है, के माध्यम से विपक्ष द्वारा की जाती है। आदेश पत्र के अनुसार आज तक 1329 कटौती प्रस्तावों की सूचनाएं दी गई हैं। मेरा कटौती प्रस्ताव समेकित व्यापार नीति के अभाव के बारे में है जिसकी वजह से हमारा विदेश व्यापार काफी घट गया है, जिसके संबंध में माननीय सदस्य श्री बंसल ने कहा है:

> "अतः इन आवश्यक सामग्रियों के संबंध में देश के आत्म-निर्भरता प्राप्त करने, जो कि इस सम्मानीय सभा की नीति रही है, पर सरकार को बधाई देने के बजाय मेरे मित्र कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हैं।"

कटौती प्रस्ताव में किसी विशिष्ट मुद्दे को चर्चा के लिए उठाया जाता है और इसमें निंदा की कोई बात निहित नहीं होती। वास्तव में कटौती प्रस्ताव के तीन रूप होते हैं।

मैं श्री बंसल की टिप्पणियों की जांच करूंगा। उन्होंने स्वीकार किया कि व्यापार में ह्रास हुआ है किन्तु इस ह्रास के अनेक कारण हैं जैसे खाद्यान्नों के आयात में कमी, कच्चे पटसन का आयात, आदि और वर्ष 1954 के दौरान व्यापार की शर्तें हमारे देश के विरुद्ध रही हैं। यह बात वाणिज्य मंत्री ने बताई है। मैं यहां स्पष्ट रूप से उस बात को उठा रहा हूं और यदि मंत्री महोदय मुद्दे को युक्तिसंगत मानते हैं तो वे इसका उत्तर दें। मैं मंत्रालय की वर्ष 1953-54 की रिपोर्ट से पुष्ट हुआ हूँ। पृष्ठ-2 पर विदेश व्यापार में स्थिरता के बारे में उल्लेख किया गया है:—

> "निर्यात का मूल्य पहले से कम था किन्तु इसमें वर्ष के अंत तक वृद्धि की प्रवृत्ति सुस्पष्ट थी। कुल मिलाकर वर्ष 1953 के दौरान देश के व्यापार संतुलन में घाटा बहुत कम था और दूसरी तरफ संतुलन से वर्तमान आय में से तथा हमारे मुद्रा भण्डार से सहायता लिए बिना विदेशी मुद्रा की हमारी आवश्यकताओं को पूरा करना संभव था।"

मेरा प्रश्न यह है कि क्या व्यापार की शर्तें ठीक करना मंत्रालय का कार्य है अथवा नहीं है? इसकी शर्तें हमारे विपरीत क्यों हैं? मेरे मित्र कह रहे थे कि विक्रेताओं का बाजार खरीददारों का बाजार बन रहा है। देश को यह जानने का अधिकार है कि व्यापार की शर्तें देश के विरूद्ध किस प्रकार हो गई हैं और मेरे द्वारा उद्धृत रिपोर्ट की स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा क्या कदम उठाए गए थे। दुर्भाग्यवश श्री बंसल के वक्तव्य पर माननीय मंत्री द्वारा ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि वह उनके पक्ष के हैं।

यहां कुछ आंकड़े हैं जिनका मैंने विश्लेषण कराया है। इस देश में आयात में गिरावट आई है। मैंने यह निष्कर्ष 'जर्नल आॅफ इण्डस्ट्री एंड ट्रेड', मार्च, 1954 के अंक से लिए हैं;

वर्ष 1952-53 में 87.87 करोड़ रुपए और अप्रैल-अक्तूबर, 1953 में 42.72 करोड़ रुपए की तुलना में 1951-52 में 104.31 करोड़ रुपए की मशीनरी। वर्ष 1952-53 में 19.30 करोड़ रुपए तथा अप्रैल-अक्तूबर, 1953 में 8.63 करोड़ रुपए की तुलना में वर्ष 1951-52 में 26.66 करोड़ रुपए की धातु। वर्ष 1952-53 में 12.68 करोड़ रुपए तथा अप्रैल-अक्तूबर, 1953 में 7.25 करोड़ रुपए की तुलना में वर्ष 1951-52 में 19.20 करोड रुपए के रसायन।

निर्यात के बारे में स्थिति यह है कि वर्ष 1950-51 में 1224 मिलियन गज कपड़े का निर्यात किया गया, जिसका मूल्य 112.17 करोड़ रुपए था। 1951-52 में वह 388 मिलियन गज रह गया और उसका मूल्य 42.95 करोड़ रुपए था। वर्ष 1952-53 में 53.19 करोड़ रुपए के मूल्य का 565 मिलियन गज कपड़े का निर्यात किया गया। अंतः इन तीन वर्षों में कपड़े की मात्रा और लागत लगभग आधी रह गई। मैंने बोरियों और चाय के संबंध में आंकड़े प्राप्त किए हैं और इनकी भी यही कहानी है। श्री बंसल ने निर्यात और आयात के लिए सूचकांक आंकड़ों पर प्रकाश डाला है। मैंने 1951-52 के लिए आयातों के सूचकांक—मात्रा 108, मूल्य 147 का विश्लेषण किया है। वर्ष 1952-53 के लिए यह आंकड़े 74 और 128 हैं और नवम्बर, 1953 के लिए यह 48 और 110 हैं। निर्यात के सूचकांक के संबंध में वर्ष 1951-52 के आंकड़े 89 और 178 हैं; वर्ष 1952-53 के लिए 94 और 116 हैं और नवम्बर, 1953 के लिए अनन्तिम आंकड़े 106 और 107 हैं।

यहां एक प्रश्न है जिसका मैं चाहूंगा कि वाणिज्य और उद्योग मंत्री उत्तर दें। यह कैसे हो गया कि एक समान गिरावट आई है? मैं समझता हूं कि देश को अधिकार है कि वह माननीय वाणिज्य उद्योग मंत्री से उत्तर प्राप्त करें और खेद है कि मेरे से पूर्व वक्ताओं ने ये मुद्दे नहीं उठाए।

इस वाद-विवाद में उद्योग के गैर-सरकारी क्षेत्र के बारे में कुछ बातों का उल्लेख किया गया है। मैंने सोचा कि भारतीय वाणिज्य मंडल परिसंघ के सचिव के रूप में अपनी विशेष स्थिति के अंतर्गत इस संबंध में कुछ करने के लिए कहेंगे। किन्तु खेद है कि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा। वर्ष 1953-54 की वार्षिक रिपोर्ट यह है। इसके पृ० 8 पर यह महत्वपूर्ण वक्तव्य है:—

> "चूंकि मंत्रालय के क्षेत्राधिकार में आने वाले उद्योगों का स्वामित्व और प्रबंध गैर-सरकारी व्यक्तियों के हाथ में है इसलिए उनके विकास और विस्तार में सरकार द्वारा निभाई जा सकने वाली भूमिका जटिल है।"

फिर पृ० 5 पर यह उल्लिखित है:—

"निःसंदेह, इसके पास नियंत्रण की व्यापक शक्तियां हैं। तथापि, नियम के अनुसार इन नियंत्रणों का प्रयोग वास्तव में नकारात्मक है। वे कतिपय अधिनियमों का निषेध कर सकते हैं किन्तु जिस तरह से वे इन शक्तियों का प्रयोग करते हैं, उस तरह से वे सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं कर सकते हैं।"

यहां मेरे पास आंकड़े उपलब्ध हैं जिनमें यह दर्शाया गया है कि नियोजित वित्त को सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र में किस प्रकार आबंटित किया गया है।

उद्योग का विस्तार	233 करोड़ रुपए
आधुनिकीकरण और प्रतिस्थापन	150 करोड़ रुपए
कार्यगत पूंजी	150 करोड़ रुपए
मूल्यह्रास, जो शामिल नहीं किया गया है।	80 करोड़ रुपए
कुल	613 करोड़ रुपए

संसाधनों को भी सूचीबद्ध किया गया है:—

विदेशी निवेश	100 करोड़ रुपए
निगमित बचत	200 करोड़ रुपए
नये निर्गम	90 करोड़ रुपए
सरकारी क्षेत्र से सहायता	5 करोड़ रुपए
अतिरिक्त लाभ कर जमा	60 करोड़ रुपए
औद्योगिक वित्त निगम	20 करोड़ रुपए
अल्पकालिक वित्त के बैंक तथा अन्य संसाधन	158 करोड़ रुपए
कुल	633 करोड़ रुपए

मैं एक प्रश्न पूछूंगा। अब तक इस सदन और सामान्य रूप से देश के पास ऐसा कोई प्राधिकृत लेखा-जोखा नहीं है जिसमें योजना के पूर्ववर्ती तीन वर्षों के दौरान इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिये तरीका निर्धारित किया गया हो और जुटाये जाने वाले और न जुटाए गए संसाधनों का उल्लेख हो। मैं समझता हूं कि सदन को वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के कार्यकलापों का आकलन करने के लिये यह जानकारी प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक है और मुझे विश्वास है कि यह अपना नकारात्मक रुख जारी नहीं रखेगा बल्कि सकारात्मक रुख अपनाएगा चाहे वार्षिक रिपोर्ट में वैसा स्वीकार किया गया है।

उत्पादन बढ़ाने के लिये बहुत कुछ किया गया है। मैंने वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय की 1953-54 की वार्षिक रिपोर्ट, जिसमें कलेंडर वर्ष 1952 और 1953 के आंकड़े प्रस्तुत किये गये है; के परिशिष्टों में वर्णित उत्पादन संबंधी आकंड़ों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया है। इसके अनुसार योजनावधि के तीसरे वर्ष में वर्तमान एककों के उत्पादन में उत्तरोत्तर कमी आई है। मैंने परिशिष्ट में दी गई जानकारी को यथासंभव वर्गीकृत किया है।

रसायन वर्ग में, क्रिअसोट, डामर, सड़क तारकोल और नेप्थेलीन उद्योगों में कम उत्पादन हुआ है, औषध वर्ग में कैफीन, स्ट्राचिनिन, शार्क लिवर आॅयल, और गैले-निकल्स की भी यही स्थिति है, साबुन वर्ग में, संगठित एककों में उत्पादन अत्यधिक कम हुआ है, प्रसाधन वर्ग में टूथ पाउडरों, चेहरे पर लगाने वाले पाउडरों और क्रीमों का उत्पादन कम हुआ है, सिगरेट वर्ग में, एक वर्ष में दो हजार मिलियन सिगरेटों का उत्पादन कम हुआ है, रंगरोगन वर्ग में अच्छे स्तर के रंगरोगनों, शीशा और शीशे की वस्तुओं बोतलों, प्रयोगशाला में काम आने वाली शीशे की वस्तुओं लैंपों, मिट्टी के बरतनों में, रिफ्रेक्टरियों को छोड़कर, एस्बेस्टस सीमेंट की चादरों, क्राकरी; इलेक्ट्रिकल पोसेलेन और रिफ्रेक्टरीज; प्लास्टिक वर्ग में इंजेक्शन मोल्डिंग और कम्प्रेसर मोल्डिंग; चमड़ा वर्ग में वनस्पतियों की छालों और पश्चिमी ढंग की पादुकाओं; इबोनाइट वर्ग में कम उत्पादन हुआ है; प्लाईवुड वर्ग में चाय की क्वालिटी और वाणिज्यिक क्वालिटी; खाद्य पदार्थ उद्योग वर्ग में बिस्कुट, कंफेक्शनरी, कोको, चाकलेट और मिल के आटे के मामले में भी कमी आई है।

इन सभी उद्योगों में 1953 में उत्पादन 1952 की तुलना में गिर गया था। मैं ऐसे लोगों में से नहीं हूं जो कि दिखावे में विश्वास करते हैं। अपने देश को अथवा अपनी सरकार को कमजोर बताने से मुझे कोई लाभ नहीं मिलने वाला है। परन्तु योजना के तीसरे वर्ष के ये आंकड़ें हैं; क्या सदन को वाणिज्य और उद्योग मंत्री को यह स्वस्थता प्रमाणपत्र देना चाहिए? इस देश को इस सदन को इस मंत्रालय जिसे गैर-सरकारी क्षेत्र का कार्यभार सौंपा गया है, के संचालन में गैर-सरकारी क्षेत्र में प्राप्त परिणामों की सरणीकृत जानकारी प्राप्त करने का हक है।

मैं चाहता हूं कि मंत्री मेरी इन तीन बातों का उत्तर दें। कई बार इस सदन ने 'इंपीरियल प्रिफ्रेंस' के कार्यचालन के तुलन-पत्र के संबंध में पूछा था और मैंने भी इस प्रश्न में सहयोग दिया था मेरे मित्र ने जी० ए० टी० टी० की एक 1949 की एक पुस्तक का हवाला दिया था। अब 1954 चल रहा है। संभवतः मैं भी कृष्णमाचारी

को ठीक रूप में उद्धृत कर रहा हूं। उन्होंने इस सदन में हमें यह आश्वासन दिया था कि जांच चल रही है और रिपोर्ट तैयार करके उपलब्ध करायी जाएगी। वस्तुतः इस वित्त वर्ष के दौरान आयातित मोटर कारों की कुछ किस्मों को वरीयता में ढील देने से "इंपीरियल प्रिफरेंस" में थोड़ा फेर बदल किया गया है। मैं यह भी जानता हूं कि कुछ सप्ताह पहले गैर (जी० ए० टी० टी०) ने इस देश को सीमित संख्या में कुछ देशों के साथ जिनका जिक्र मेरे मित्र ने किया है टैरिफ पर वार्ता करने की अनुमति प्रदान की थी, परन्तु यह विवाद का विषय नहीं है, विषय है आयात और निर्यात में कार्यक्रमों के संचालन में 'इंपीरियल प्रिफरेंस' द्वारा पूर्ण विश्लेषण है ताकि देश को सही रूप में यह पता चले कि यह कैसा कार्य कर रहा है। कभी-कभी बहुत बड़े वक्तव्य दिये जाते हैं जिनमें भुगतान संतुलन देश के विरुद्ध नहीं है। पर देश को इस उत्तर की अपेक्षा नहीं है और मुझे आशा है कि मंत्री महोदय इस वाद-विवाद के उत्तर में अपना वक्तव्य देंगे कि उस जांच का क्या हुआ, वह रिपोर्ट कहां है और उसे कब प्रकाश में लाया जायेगा?

दूसरी बात सूती कपड़ा उद्योग संबंधी कार्यदल की रिपोर्ट जिसके अध्यक्ष श्री रामास्वामी मुदलियार हैं, के संबंध में है। यह समिति 13 नवम्बर, 1949 को नियुक्त की गई थी। समिति ने अपनी रिपोर्ट पर 22 अप्रैल, 1952 में हस्ताक्षर किये। 28 जनवरी, 1953 को यह मुद्रित की गई। इसमें 613 पृष्ठ हैं, इसमें 92 सिफारिशें की गई हैं। परन्तु इस रिपोर्ट को जनता को सुलभ कराने से भी पहले भारत सरकार ने 28 नवम्बर, 1953 को कानूनगो समिति नियुक्त कर दी। मेरे पास इन दोनों समितियों के विचारार्थ विषय हैं और मैं निर्भीकतापूर्वक यह कहता हूं कि दोनों के विचारार्थ विषयों में खास अंतर नहीं है। परन्तु इस रिपोर्ट का क्या हुआ? इसका मूल्य रु० 14-10-0 रुपये प्रति है। क्या सरकार ने इस रिपोर्ट की सिफारिशों पर विचार किया है? यदि हां तो उन्होंने क्या कार्यवाही की है? अब नवम्बर, 1953 में दूसरी समिति क्यों नियुक्त की गई? और जब रिपोर्ट सामने आती है तो उसका क्या होगा? देश में इस संबंध में भ्रांतियां हैं और यह जानने की उत्सुकता भी है कि रिपोर्ट तैयार करने में करदाताओं का कितना धन खर्च हुआ है। सदन को याद होगा कि केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन के मामले में भी ऐसा ही प्रयास किया गया था। मैं सरकार की समितियों की उन्मुक्त रूप से नियुक्ति करने की प्रवृति और उसकी सिफारिशों पर कुछ भी प्रतिक्रिया व्यक्त न करने की प्रवृति की कड़े शब्दों में निंदा करता हूं। मैं किसी समिति अथवा उसकी सिफारिशों का जिक्र नहीं कर रहा हूं। परन्तु जांच समितियों के कार्यकलापों में और उनकी रिपोर्टों के प्रकाशन में करदाताओं का भारी धन खर्च होता है, मैं चाहता हूं कि इस संबंध में मंत्री अपनी जानकारी दें।

और अंत में, मैं आपको फाउंटेन पैन का वृतान्त सुनाता हूं। यह आन्ध्रप्रदेश के राज्य मुंदरी में शत प्रतिशत निर्मित की जाती है, दो वर्ष पहले मैंने वाणिज्य और उद्योग मंत्री को लिखा था कि यह फर्म जर्मनी से 10,000 रुपये का माल मंगवाने हेतु लाइसेंस प्राप्त करना चाहती है। जहां तक मुझे पता है यह फर्म पिछले तीस वर्ष से चल रही है। महात्मा गांधी ने बीस वर्ष पहले इस फैक्टरी का दौरा किया था और इसकी प्रशंसा की थी। भारत गणतंत्र राज्य के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उपहार में देने हेतु कुछ महीने पहले कई पैन खरीदे थे। दो वर्ष पहले मैंने मंत्री महोदय को इस उद्योग के बारे में लिखा था। यह कुटीर उद्योग है यह जाना-माना उद्योग है, इसके दो-तीन और एकक हैं। मुझे कुछ ही दिन बाद उनके एक कर्मचारी से उत्तर मिला कि यह कार्य किया जा रहा है। उसके बाद मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। मैं किसी पर मिथ्या दोषारोपण नहीं कर रहा हूं। इस फर्म में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। मैंने इसका संदर्भ इसलिए दिया है, क्योंकि कुटीर उद्योग को इस मंत्रालय द्वारा दी गई सहायता के बारे में वार्षिक रिपोर्ट के अध्याय-दस में इसका काफी कुछ उल्लेख किया गया है। इस फर्म का पत्र यह है—मैं फर्म का नाम नहीं दूंगा, क्योंकि फर्म का प्रचार करने में मुझे रुचि नहीं है।

"हमें जुलाई-दिसम्बर, 1953 की अवधि में सेल्यूलोस नाइट्रेट फांउटन पेन की ट्यूबों का आयात करने के लिए एक आयात लाइसेंस संख्या 999632/53/ए०यू०/एम०डी०आर०, दिनांक 11 जून, 1953 प्रदान किया गया था। चूंकि यह कम अवधि के लिए वैध था। इसलिए सप्लायरों की इच्छानुसार इसे 31.12.53 तक बढ़ा दिया गया। तदनुसार सप्लायरों फाउटेनपैन को 50 पाउंड ट्यूबों में से ऐसी को छोड़कर जोकि सप्लायरों के परीक्षकों द्वारा अस्वीकार कर दी गई थीं, नवीकृत लाइसेंस की अवधि समाप्त होने की अंतिम तारीख को माल भेज दिया। हमने शेष 43 पाउंड ट्यूबों के लिए लाइसेंस की मंजूरी हेतु उप मुख्य आयात-नियंत्रक, मद्रास को एक बार पुनः आवेदन किया।"

अब ये उद्योग इधर उधर भाग दौड़ कर रहे हैं। पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत औद्योगिक विकास में यह बहुत ही महत्वपूर्ण उद्योगों में गिना जाता है। वाटरमैन्स तथा पार्कर फाउंटेन पेनों का संयोजन किए जाने हेतु जिस प्रकार लाइसेंस दिए जाते हैं, इसकी खबरें समाचार पत्रों में प्रकाशित होती हैं। यह फाउंटेन पेन उद्योग कुटीर उद्योग के आधार पर अनेक वर्षों से अस्तित्व में है। मैं इस समाचार पत्र को नहीं पढ़ूंगा, जिसमें कहा गया है कि इस प्रकार के लाइसेंस उच्च पदों पर आसीन लोगों के संबंधियों और मित्रों को दिए जाते हैं। मैं यहां भारत सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध कोई बात कहने के लिए नहीं आया हूं। लेकिन मैं समझता हूं कि देश को इसका उत्तर प्राप्त करने का हक है। इस फाउंटेन पेन की यह कहानी है।

वित्तीय मामले
I
औद्योगिक वित्त निगम

मुझे हार्दिक खेद है कि औद्योगिक वित्त निगम (संशोधन) विधेयक पर चर्चा ने अनेक गोड़ लिए हैं। इनसे बचा जा सकता था, यदि सत्ता पक्ष के बारे में मेरे मित्र इस सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति लापरवाहीपूर्ण रवैया न अपनाते।

उपाध्यक्ष महोदय ने पहले दिन की चर्चा पर अपना विनिर्णय दिया था और इस सदन के सदस्यों को फर्मों के नाम सूचित कतिपय जानकारी उपलब्ध कराने की मांग की थी। सरकार ने इस निर्णय का पालन नहीं किया। इसके विपरीत, प्रधान मंत्री, पंडित नेहरू ने यह कहा कि वित्त मंत्री ने ऋणाप्राप्त करने वालों को कुछ आश्वासन दिए हैं। वित्त मंत्री डा० देशमुख भारत से बाहर गए हुए हैं और जब तक वे लौट कर नहीं आते, तब तक इस मामले में कुछ भी नहीं किया जा सकता। मैं सत्ता पक्ष से यह पूछना चाहता हूं कि क्या वित्त मंत्री, डा० देशमुख द्वारा दिया गया आश्वासन, मौखिक था गोपनीय था और इसे कार्यवाही वृतांत में सम्मिलित नहीं किया गया था।

औद्योगिक वित्त निगम (संशोधन) विधेयक को लोक सभा में 2 दिसम्बर, 1952 पर चर्चा से, कालम. 1475-1484 क्या अन्य किसी बात के अलावा, इस बात को महत्व देते हुए इस सम्मानीय सदन को देश की इस प्रभुसत्ता संसद को सरकार के मंत्री के उनकी सुविधानुसार देश में आने तक और सभा में उपस्थित होने और इस प्रकार के विधेयक पर सूचना देने तक के लिए इंतजार करना चाहिए। ताकि यह बताया जा सके कि सरकार जिस प्रकार इस सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों को नियंत्रित कर रही है उन अविवेकपूर्ण तरीके से देश चिंतित है। मैं आपकी अनुमति से "दि-हिन्दु" समाचार पत्र में प्रकाशित एक लघु उद्धरण पढ़ता हूं। यह एक ऐसा समाचार-पत्र है जैसाकि आप जानते हैं यह सरकार का मित्र है और अपनी ईमानदारी और संयमन के लिए प्रसिद्ध है—यह सम्पादकीय 29 नवम्बर, 1982 के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसमें कहा गया है कि:

"ऐसा कोई भी कारण नहीं है कि इसकी जानकारी लोगों को न दी जा सके बैंकों का अपने ग्राहकों के प्रति वचनबद्धता का नियम आई० एफ० सी० (औद्योगिक वित्त निगम)

पर लागू नहीं होता क्योंकि यह एक अर्ध-सरकारी संस्था है और जो इस संस्था से सहायता प्राप्त करते हैं, उन पर वही नियम लागू होते हैं जो उन संस्थाओं पर, जिन्हें औद्योगिक अधिनियम के अन्तर्गत सरकारी सहायता प्राप्त होती है , ब्रिटेन में औद्योगिक वित्त निगम के कार्यसंचालन में कोई भी गुप्त बात नहीं रखी जाती।" इसके अतिरिक्त समाचार-पत्र में यह भी कहा गया है और मैं उसे यहां उद्धृत कर रहा हूं

"विश्व बैंक द्वारा औद्योगिक वित्त निगम को दी गई किसी भी राशि को सरकार द्वारा गारंटी प्रदान की जानी चाहिए, और सरकार को सुनिश्चित करना चाहिए कि निगम की किसी भी गतिविधि के बारे में शंका न की जा सके।"

मुझे यह आशा थी कि मेरे माननीय मित्र, श्री खंडुभाई देसाई ने औद्योगिक वित्त निगम के निदेशक की हैसियत से, सदन को यह अवश्य बता दिया होगा कि औद्योगिक वित्त निगम से ऋण प्राप्त करने वालों, जो कि अवश्य ही पब्लिक लिमिटेड कम्पनियां होंगी को दिए गए ऋण अथवा स्थान आवंटन को उन विशेष कम्पनियों के तुलन-पत्रों में अवश्य दर्शाया गया होगा। मैं कहीं समझता हूं कि, भारत सरकार अथवा सदन में मेरे समक्ष बैठे वित्त मंत्री, ऐसी सूचना सप्लाई नहीं कर पायेंगे जिसे हम प्राप्त कर सकते हैं, बशर्ते इसके लिए काफी मेहनत से अनुसंधान किया जाये। मुझे आशा थी कि मेरे माननीय मित्र श्री खंडुभाई देसाई कम-से-कम उन फर्मों के नाम अवश्य बतायेंगे जिन्हें ऋण दिया गया था और जिनके निदेशक, किसी न किसी रूप से औद्योगिक वित्त निगम से जुड़े हुए हैं।

वास्तव में श्री के० के० देसाई जो पहले बोले थे उन्होंने, यह कह कर कि रद्द किए गए आवेदन पत्रों के बारे में सूचना देने पर ऋण-आवेदकों को हानि हो सकती है, सारे तर्क को ही तोड़-मरोड़ दिया है। इस मुद्दे पर चर्चा नहीं हो रही है। अगर मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो सारा देश इस बहुत ही साधारण मुद्दे पर व्यथित है कि क्या पक्षपात किया गया है। क्या एकाधिकार व्याप्त है और व्यापारियों का एक ऐसा समूह है जो औद्योगिक वित्त निगम का अपने ही हितों के लिए ही प्रयोग कर रहा है। मैं यहां स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूं कि, और मैं चाहूंगा कि मेरे मित्र, राजस्व मंत्री, इसका खंडन करें, कि कम-से-कम तीन ऐसी पब्लिक कम्पनियों को औद्योगिक वित्त निगम द्वारा 116 लाख रुपए से अधिक के ऋण दिए गए, जिनके चेयरमैन अथवा निदेशक, अथवा उनके परिवार के सदस्य के निगम के मुख्य अधिकारियों से संबंध हैं। मैं उनके नाम बता सकता हूं। पूरे विश्वास के साथ यह कह रहा हूं कि और मैंने इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए कोशिश की है। मैं नाम नहीं बता रहा हूं, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि किसी विशेष

कम्पनी को कोई हानि हो। मैं यह बात कहना चाहता हूं कि: क्या यह सत्य नहीं है कि चेयरमैन से लेकर नीचे के अधिकारी और कर्मचारियों ने अपने मित्रों और व्यापारिक समूहों में स्वंय को अपने मित्रों को और अपने सहयोगियों को स्थान और ऋण उपलब्ध कराये है जो दुर्भाग्यपूर्ण इस देश के लिए अपमान की बात है।

इस सदन को सरकार से जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है। करदाताओं की राशि से 26 लाख रुपए अब तक लाभांश की गारंटी देने पर खर्च हो चुके हैं। वास्तव में यह राशि 26 लाख रुपए से कुछ अधिक है। अगर आप दूसरे पक्ष पर ध्यान दें, तो 50 लाख रुपए, शीघ्र ही विशेष आरक्षित निधि के लिए रखे जाएंगे। इस विशेष औद्योगिक वित्त निगम के लिए शेयर पूंजी के लिए 2 करोड़ रुपए की राशि करदाताओं की रकम से और रिजर्व बैंक से जुटाई गई है। मैं कम से कम इतना कहना चाहता हूं कि इस सदन के अधिकार और विशेषाधिकार हैं, जिनकी गारंटी होनी चाहिए, और सभापति महोदय आपको ससम्मान सहित मैं एक उल्लेख करता हूं कि वाद-विवाद के पहले दिन उपाध्यक्ष महोदय द्वारा दिए गए निर्णय की इस प्रकार अवहेलना नहीं की जानी चाहिए थी, जैसा कि मेरे सामने बैठे हुए मित्रों ने की है।

इतना कहने के पश्चात्, मैं निगम के ढांचे और इसके अभिप्रेतार्थों के बारे में संक्षेप में कहना चाहूंगा । मेरा यह विचार है कि औद्योगिक वित्त निगम को केन्द्र और राज्यों, दोनों में ही आर्थिक विकास और देश के पुनर्निर्माण विशेषतः गैर-सरकारी क्षेत्र के विकास के लिए आगे आना चाहिए। वास्तव में मेरे मित्र माननीय श्री एम० सी० शाह द्वारा विधेयक को पुरःस्थापित करते समय जो वक्तव्य दिया गया उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं।

"पूंजी बाजार में अनुपलब्ध पूंजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए।"

यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण वक्तव्य है, लेकिन मैं जिम्मेदारी के साथ कहने को तैयार हूं कि आज की चर्चा समेत, पिछले तीन दिनों की चर्चा के दौरान, ऐसा प्रतीत हुआ कि यह छोटा सा औद्योगिक वित्त निगम गैर-सरकारी क्षेत्र के उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वर्ग से 'मन्ना' सप्लाई करेगा। हालांकि, श्री बसन्त ने स्वीकार किया है कि, गैर-सरकारी क्षेत्र को अपनी गतिविधियां जारी रखने के लिए प्रति वर्ष 100 करोड़ रुपए की आवश्यकता है। योजना आयोग ने भारत में वर्तमान में गैर-सरकारी क्षेत्र के उद्योगों की कुल पूंजी 1,500 करोड़ रुपए मांगी है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर कल अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से हमें 8 करोड़ रुपए भी प्राप्त हो जाते हैं, तो हम इसकी कुल

गतिविधियों का दो प्रतिशत भी जारी रख पाने में समर्थ नहीं होंगे। मैं इसका उल्लेख इसलिए कर रहा हूं कि हम इस चर्चा के दौरान औद्योगिक वित्त निगम को बिना वजह अत्याधिक महत्व दे रहे हैं। हालांकि मैं इसके अस्तित्व के महत्व को कम नहीं कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि इसका विस्तार हो। वास्तव में, मैंने इसके कुछ खण्डों — इस विधेयक के खण्ड 11, 12 और 13 का जोरदार समर्थन किया है। चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए इस पक्ष के कुछ मित्रों ने सुझाव दिया था कि अन्ततः औद्योगिक वित्त निगम के पास सौ करोड़ रुपए की पूंजी हो जाएगी, जो कि इसके प्रमुख अधिकारियों के मित्र उद्योगों समूहों में बांट दी जाएगी। मेरे माननीय मित्र श्री शाह ने कहा था, 'नहीं, नहीं'। मैंने औद्योगिक वित्त निगम के मौजूदा कुल संसाधनों का पता लगाने का प्रयास किया है। पूरे पांच वर्ष की अवधि में यह 40 करोड़ रुपए भी नहीं होगी। अगर यह भी मान लिया जाए कि भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से इसे कुछ सहायता मिलेगी, तब भी यह 50 करोड़ रुपए से अधिक नहीं होगी।

आइए, इस विधेयक के ढांचे पर विचार करें। मुझे खुशी है कि मुझे अवसर मिला है कि इस विधेयक के ढांचे और स्वरूप का उस रूप में अध्यापन करूं जिस रूप में इस निगम के अब तक के कार्यों को व्यवस्थित किया गया है। को पाया है। निगम की स्थापना के चार वर्षों के दौरान आवेदनों की संख्या और इसके द्वारा मंजूर की गई राशि का ब्यौरा इस प्रकार है:—

	संख्या	धनराशि (करोड़ रु०)
1	2	3
—10 लाख रुपए से कम राशि के ऋण	53	2.99
—10 लाख रुपए से अधिक राशि के ऋण लेकिन 20 लाख रुपये से कम	21	3.21
—20 लाख रुपए से अधिक राशि के ऋण लेकिन 30 लाख रुपए से कम	7	1.95
—30 लाख रुपए से अधिक राशि के ऋण लेकिन 40 लाख रुपए से कम के ऋण	5	1.95

1	2	3
40 लाख रुपए से अधिक राशि के ऋण लेकिन 50 लाख रुपए से कम के ऋण	8	3.93

अब मैं, इस बात पर जोर देना चाहता हूं — और वर्तमान संशोधित विधेयक के खण्ड 13 से इसका महत्वपूर्ण संबंध है — वह यह है इस छोटे से औद्योगिक वित्त निगम, जो कि एक वर्ष में 5 करोड़ रुपए से कम का कारोबार है; अब इसकी ऋण देने की सीमा को 50 लाख रुपए से बढ़ाकर एक करोड़ रुपए करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में, देश के कम से कम एकको के लिए स्थान उपलब्ध होंगे। दूसरे शब्दों में निगम के प्रबंधकों के चहेते लोगों को धन प्राप्त होगा। यह एक बहुत ही गलत प्रवृत्ति होगी। मेरे पास निगम के वर्ष 1951-52 की (तुलन—पत्र के आंकड़े हैं। मैं सदन में बहुत से आकड़ें नहीं रखना चाहता, लेकिन हम देखते हैं कि कागज मिलों को 71 लाख रुपए, कपड़ा मिलों को करीब 43.75 लाख रुपए और चीनी उद्योग को करीब 95 लाख रुपए का ऋण उपलब्ध कराया गया। मैं पूछना चाहता हूं कि पिछले वर्ष चीनी उद्योग को 95 लाख रुपए किस उद्देश्य के लिए दिए गए? यह एक परित्यक्त पुरानी वस्तु है और वैसे भी अब हमारे पास लगभग 4000,000 टन चीनी फालतू है और इसके लिए विदेशों में बाजार उपलब्ध नहीं है, इस रकम की भरपाई वे कैसे करेंगे? मैं जिम्मेदारी से और व्यापार संचालन की अपनी कुछ जानकारी के आधार पर गंभीरतापूर्वक यह सुझाव दे रहा हूं कि व्यापारियों के कुछ निहित स्वार्थी समूह, औद्योगिक वित्त निगम को अपने निजी स्वार्थों के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। मेरी इच्छा है कि इस देश में, और विशेषकर औद्योगिक वित्त निगम जापानियों के अधिक से अधिक विविधता लाने के तरीकों को अपनाए। मैं मानता हूं कि अपने 4$^{1}/_{2}$ वर्ष के कार्यकाल के दौरान औद्योगिक वित्त निगम ने औद्योगिक विकास में अधिक-से-अधिक, विविधता लाने की नीति अपनाई है। लेकिन यह समुद्र में बूंद के समान भी नहीं है। मैं इस पर विवाद नहीं कर रहा हूं, लेकिन जैसाकि मैंने पहले भी कहा है कि हमें इसके ढांचे की ओर ध्यान देना चाहिए। मैं यह बात कहना चाहता हूं कि धीरे-धीरे निगम के धन को एकल व्यक्तियों, कुछ व्यक्तियों के समूहों या कम्पनियों को दिए जाने की इस प्रक्रिया को बन्द किया जाना चाहिए और यही इसके लिए उचित समय है।

मुझे जो आंकड़ें प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर मैंने कुछ विश्लेषण किया है, निगम

की स्थापना के प्रथम चार वर्षों के दौरान, निगम की एक तिहाई ऋण योग्य वित्त बड़े उद्योगों, पुराने उद्योगों को दिया गया और उनमें से कुछ परित्यक्त उद्योगों को भी दिया गया। इन चार वर्षों के दौरान 12.59 करोड़ रुपए में से 3.93 करोड़ रुपए ऐसे उद्योगों को दिए गए। दूसरी ओर, अगर हम जापानी तरीके अपनाते हैं तो औद्योगिक विकास में विविधता लाने के लिए अनेक अवसर उपलब्ध होंगे और वित्त उपलब्ध हो सकेगा। जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री शाह ने कहा है, नए जरूरतमंद एककों के लिए पूंजी बाजार में अनुपलब्ध पूंजी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, ऐसा होना आवश्यक है।

इस पक्ष में मेरे तर्क चार प्रकार के हैं। पहली बात यह कि कतिपय पुरानी किस्त के बड़े उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के प्रश्न पर विचार करने के बजाय यदि मयम और लघु उद्योगों का विकास किया जाय तो यह कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगा। दूसरे, बड़े औद्योगिक एकक अपनी देखभाल स्वयं कर सकते हैं। श्री खांडुभाई देसाई द्वारा इस तथ्य के बारे में दिए गए वक्तव्य ने मेरा ध्यान आकर्षित किया है कि ये अनुदान दिए जाने से पहले कर्जदारों से संपार्श्विक प्रतिभूर्ति मांगी गई थी और प्राप्त की गई थी। मेरे पास इस संबंध में एक विश्लेषण है— मैं इस विश्लेषण को सभा पटल पर रखने अथवा श्री त्यागी, अथवा श्री शाह अथवा नेहरु जी को देने के लिए तैयार हूं। सच्चाई यह है। 15 लाख रुपए की रोपट पूंजी वाली एक कम्पनी विशेष को 50 लाख रुपए की वित्तीय सहायता दी गयी थी। अब इस मामले में जमानत कहां है? मेरे माननीय मित्र श्री शाह ने अपने भाषण में कहा है कि खंड़ सम्पत्ति या पूंजी परिसम्पत्ति के आधार पर ऋण प्रदान किया जाता है (**व्यवधान**) मैं श्री शाह के आरंभिक भाषण से स्वयं उन्हीं का हवाला दे रहा हूं, यह रिकार्ड में है और अब यह उनका काम है कि वह इस प्रश्न का उत्तर दें। तीसरा मुद्दा यह है कि औद्योगिक वित्त निगम के पास इतने संसाधन नहीं है कि वह उन बड़े-बड़े उद्योगों का वित्त पोषण कर सके जो निश्चित तौर पर अपनी व्यवस्था स्वयं कर सकते हैं। अन्त में, योजना आयोग विद्यमान है। कुछ माननीय सदस्यों ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रश्न उठाए थे। लेकिन यह योजना आयोग का काम है कि वह बड़े वित्त-साधन जुटाए। आप केन्द्र में औद्योगिक वित्त निगम के माध्यम से यह काम नहीं कर सकते जोकि जैसाकि मैंने पहले कहा है, देश के सम्पूर्ण गैर सरकारी क्षेत्र की कुल आवश्यकताओं को देखते हुए एक प्रतिशत पूंजी भी नहीं जुटा सकता।

ये सब बातें कहने के पश्चात् मैं सभा का ध्यान एक और ऐसे मुद्दा की और आकर्षित करना चाहता हूं जिसे दुर्भाग्यवश, इस वाद-विवाद में अभी तक नहीं छुआ गया है। यह मुद्दा औद्योगिक वित्त निगम द्वारा दिए जाने वाले ऋण की ब्याज दरों के बारे में

है। कहा जाता है कि सरकार द्वारा 2 1/4 प्रतिशत लाभांश की गारंटी दी गई है और यह कि इस निगम के अस्तित्व में आने के पहले चार वर्षों के दौरान यह गारंटी पूरी करने के लिए कर दाताओं से प्राप्त लगभग 26 लाख रुपए की धनराशी उपयोग में लाई गई है। मेरे देखने में आया है कि वर्ष 1950-51 की तुलना में 1951-52 के दौरान निगम की आय में वृद्धि हुई है। लाभांश की गारंटी को पूरा करने के लिए करदाताओं से प्राप्त होने वाली धनराशि में भी थोड़ी-थोड़ी कमी होती जा रही है। एक ही बात है। आइये हम इस समस्या की रूपरेखा पर नजर डालें। निगम अपने ऋण पर 5 1/2 प्रतिशत ब्याज लेता है जो गत वर्ष इसे बढ़ाकर 6 प्रतिशत कर दिया गया, लेकिन साथ ही यह आश्वासन भी दिया गया था यदि ब्याज और मूलधन की किश्तें शीघ्र ही अदा कर दी जाती है तो आधा प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज माफ कर दिया जाएगा। मेरे माननीय मित्र श्री शाह जब वाद-विवाद का उत्तर दें तो मैं उनसे यह जानना चाहूंगा कि सरकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से किस ब्याज-दर पर ऋण प्राप्त करने जा रही है। जहां तक मुझे जानकारी है, यह लगभग एक प्रतिशत है और मेरे माननीय मित्र श्री बंसल ने बताया है कि यह लगभग 5 प्रतिशत है।

मुझे ब्याज-दर के बारे में जानकारी नहीं है और इसकी घोषणा करना सरकार का काम है। प्रश्न यह है कि क्या यह 5 1/2 प्रतिशत की ब्याज-दर परिकलित करते समय देश के औद्योगिक विकास को सुनिश्चित करने की बात ध्यान में रखी गई है? क्या यह दर उचित है? क्या आप उन उद्योगों की वास्तव में सहायता कर रहे हैं जो वित्तीय सहायता मांग रहे हैं? मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र श्री शाह लौट कर इसी बात पर आएंगे और बताएंगे कि 'भारत में कौन सा संयुक्त स्टाक बैंक अथवा कोई अनुसूचित बैंक 5 1/2 प्रतिशत की ब्याज-दर पर ऋण देने के लिए तैयार है? लेकिन मेरा प्रश्न यह है। क्या औद्योगिक विस्तार के लिए, उन उद्योगो जो वित्त बाजार (मनी मार्किक) से धन प्राप्त नहीं कर सकते रियायती ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराने हेतु कोई सकारात्मक नीति तैयार की गई है? जैसाकि विधेयक के प्रभारी माननीय मंत्री महोदय ने भी अपने प्रारंभिक भाषण में यह बात कही है। मैं जो बात पहले कह चुका हूं उसी के बारे में यह प्रश्न उठाता हूं और उसे मैं पुनः दोहराऊंगा अर्थात् हमें इस देश में जापानी तरीका अपनाना होगा न कि उससे केवल वाणिज्यिक सम्पर्क स्थापित करना है जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री बंसल ने कहा है। मैं समझता हूं कि यह देश तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक कि उद्योगों में विविधता नहीं लाई जाती और जरूरतमंद एककों को रियायती ब्याज-दर पर ऋण उपलब्ध कराने संबंधी नीति सहित एक सकारात्मक औद्योगिक नीति तैयार नहीं की जाती।

मैं बहुत ही संक्षेप में बोलूंगा—क्योंकि मैं देखता रहा हूं कि मेरे अन्य अनेक माननीय मित्र इस विधेयक पर बोलने के लिए उत्सुक हैं—और विधेयक के खंड 11 और 12 में संशोधन करने वाले मुख्य खंडों के बारे में बात करूंगा। खंड 11 के अन्तर्गत, ऐसे सुरक्षा पत्रों की बिक्री से बचने के लिए रिजर्व बैंक से ऋण लेना अपेक्षित है जिनका यह ऋण लिए जाने के 90 दिन के भीतर पुर्नभुगतान किया जाना है। निगम के बांडों तथा निर्गमों में उतार-चढ़ाव के समय रिजर्व बैंक से 18 महीने के लिए ऋण लिया जा सकता है, और ऐसे ऋण की अधिकतम राशि 3 करोड़ रुपए तक सीमित है। मैं चाहता हूं कि यह राशि विधेयक में उल्लिखित राशि से दुगुनी होती तो ठीक था क्योंकि मैं समझता हूं कि अन्ततः औद्योगिक वित्त निगम के संसाधनों को इस सौंपे गए कार्य पूरे नहीं किए जा सकेंगे जिनकी कि आशा है।

इसके अलावा, मैं खंड 12 का स्वागत करता हूं, यद्यपि मुझे कहना पड़ेगा कि जहां तक संभव है, सर्वोच्च स्तर पर यह बात सुनकर मैं चकित रह गया कि क्योंकि ऋण मिलने ही वाला है, और अनेक अनुस्मारक आगए हैं, अतः हमें फिलहाल इन सभी को पढ़ना है, यहां तक कि यह विधेयक प्रवर समिति को सौंपे बिना, इस सभा के सदस्यों को जानकारी प्रदान किए जाने की आवश्यकता पूरी किए बिना पूरा किया गया है, जिसके लिए नियमों और इस सभा के विशेषाधिकारों के अन्तर्गत आप और मैं सभी हकदार हैं। लेकिन मुझेसे कहा गया था कि हमऐ यह जल्दबाजी में पढ़ना है क्योंकि हम जल्दी में हैं। एक ही बात है। मेरा इस मामले के प्रति विपरीत दृष्किोण नहीं है, और जैसकि मेरे माननीय मित्र बंसल ने कहा है कि भारत को अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा दी गई किसी भी वित्तीय सहायता को राजनैतिक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता नहीन है, क्योंकि मैं महसूस करता हूँ कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ की योजना में मूलरूप से शामिल हैं जिसके विस्तार को ध्यान में रखते हुए हम इसमें स्वयं अंशदान करते हैं। आपको याद होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और बैंक में भारत का 400 मिलयन डालर का अंशदान है। हमें अभी तक एक चौथाई धनराशि भी प्राप्त नहीं हुी है। हमसे इस कोष में भुगतान करने की आशा की जाती है अथवा हम इसके लिए बाध्य हैं इसमें भुगतान करना हमारा उत्तरदायित्व है। इसका परिणाम यह है कि हम थोड़ा थोड़ा करके विश्व समुदाय के लिए और अधिक धन प्रदान कर रहे हैं ताकि हम विश्व के विकास में सहायता दे सकें।

जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं, मैं खंड 13 का विरोध करता हूं— और मुझे आशा है कि इसका विस्तार से विरोध करने का मुझे एक और अवसर मिलेगा जिसमें कि ऋण

की सीमा 50 लाख रुपए से बढ़ा कर एक करोड़ रुपये की गई है; क्योंकि धन बहुत ही कम है और जैसा कि मैंने कहा है ऋण के रूप में उपलब्ध धनराशि को प्राप्त करने के लिए जो व्यक्ति सामने आएंगे उनमें सबसे अधिक संख्या उन लोगों की होगी जिनका औद्योगक क्षेत्र में एकाधिकार है और मैं आशा करता हूँ कि इस सभा में मेरे माननीय मित्र विधेयक में संशोधन करने वाले इस प्रस्तावित उपबंध के संभावित दुरूपयोग के प्रति अने गंभीर विचार प्रकट करेंगे।

इतना कहने के पश्चात् मैं आप से एकबार पुनः अनुरोध करते हुए अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा, क्योंकि भारत सरकार के रवैये से सि सभा के अधिकारोन और विशेषाधिकारों में हस्तक्षेप हुआ है। यह करीब-करीब वित्त विधेयक है इसमें करदाताओं की भारी धनराशि अन्तर्विष्ट है। इस सभा को जानकारी प्रात करने का हक है मुझे याद है, पिछले सत्र में जब आकाशवाणी द्वारा कुछ प्रकार के ठेके किसी अन्य व्यक्ति को दे दिए गए थे, तो माननीय सूचना और प्रसारण मंत्री ने जानकारी देने से इनकार कर दिया था और तब अध्यक्ष ने यह निर्णय दिया था कि सम्बन्धित जानकीर सभा पटल पर रखी जाए। मुझे आशा है कि इस मामले में मेरे साथी दलगत भावना से ऊपर उठकर इस माननीय सभा का जिस तरीके से संचालन किया जा रहा है, उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे; क्योंकि सरकार केवल इस देश में शीर्षस्थ एक अथवा दो व्यक्तियों को संरक्षण देने का प्रयास कर रही है। यह मेरा दावा है कि यह प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद है, किसी को भी संरक्षण नहीं दिया जा सकता। देश सबसे ऊपर है और मुझे आशा है कि मेरा अनुरोध व्यर्थ नहीं जाएगा।

II
राज्य वित्त निगम

जहां तक राज्य वित्त निगमों के कार्य परिणामों का सम्बन्ध है, जब गत सप्ताह, अर्थात् अगस्त, 1956 में, मुझे इस वाद विवाद के स्थगत का प्रस्ताव रखने का गौरव प्राप्त हुआ था, तो मुझे आशा थी कि इस सभा की सर्वसम्मत इच्छा को देखते हुए मेरे माननीय मित्र, श्री गुहा सभा के ग्रन्थालय में रखे जाने हेतु उक्त विवरण की कम से कम कुछ प्रतियां तो उपलब्ध कराएंगे ही। मुझे यह बताना पड़ेगा कि जब मैंने कुछ ही समय पूर्व अपने माननीय मित्र से लाबी में बात की थी, तो उन्हें मुझसे यह कहना पड़ा था—मुझे डर है, मुझे उनकी विवशता को स्वीकार करना होगा—कि उन्हें सभा पटल पर रखे जाने के लिए राज्य वित्त निगमों के प्रतिवेदनों की प्रतियां प्राप्त नहीं हो सकी हैं। अध्यक्ष महोदय, आपको याद होगा कि इस सभा ने इस संबंध में अनेक बार बड़ी गंभीर चिन्ता प्रकट की थी कि संसद द्वारा पारित कानूनों के अन्तर्गत सरकारी निगमों की जिस तरीके से स्थापना की गई थी उसमें इस माननीय सभा द्वारा विचार करने के लिए संशोधन नहीं किया जा सकता। मुझे सरकारी निगमों और स्वयं औद्योगिक वित्त निगम पर संसदीय नियंत्रण के संबंध मे कम से कम दो वाद-विवाद आरंभ करने का गौरव प्राप्त हुआ था। मुझे याद है उस समय मेरे माननीय मित्र श्री गुहा ने मुझे यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त समर्थन दिया था कि औद्योगिक वित्त निगम के कार्यकलापों के संबंध में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। मुझे खुशी है कि जबसे श्री गुहा दूसरे पक्ष में गए हैं और सत्ता पक्ष में स्थान ग्रहण किया है, उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए अपनी ओर से पूरा प्रयास किया है कि औद्योगिक वित्त निगम निष्पक्षरूप से सही कार्य करे।

मैं अपने मित्र श्री गुहा की प्रशंसा कर रहा हूं कि जब से वह मंत्री पद पर आसीन हुए हैं, तब से वह एकदम निर्बाध किन्तु नियमित रूप से कार्य कर रहे हैं, किन्तु यह छोटा सा मुद्दा है।

अध्यक्ष महोदय, मैं एक मुद्दे पर आपका व्यक्तिगत ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा.....सरकार की ओर से हर बार एक ही तर्क दिया जाता है: कि ये निगम स्वायत्तशासी हैं। आखिकार वे निगम हैं। हम संभवतः उनके रोजमर्रा के कार्य आदि में तत्काल हस्तक्षेप नहीं कर सकते"। लेकिन जहां तक मैं इसे देखता हूं, यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। यदि मैं गलत नहीं कह रहा हूं तो यह सभा इस स्थिति विशेष पर गत 41/2 वर्षों से नजर रखे हुए है, उक्त निगमों की स्थापना करने के लिए ये कानून इस

* राज्य वित्त निगम (संशोधन) विधेयक पर हुई चर्चा में उद्धृत, लोक सभा, 30 अगस्त, 1956 की 4909—4921

सभा द्वारा पारित किए जाते हैं, और तत्काल ही वे सुरक्षा धेरे के पीछे चले जाते हैं, वे अटल कदम उठा लेते हैं और कहते हैं यह निषिद्ध क्षेत्र है, आप इसकी जांच नहीं कर सकते, वहां लोग मौजुद हैं जो अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हैं। चाहे यह दामोदार घाटी निगम हो अथवा औद्योगिक वित्त निगम हो अथवा सिन्द्री अथवा शिपयार्ट अथवा वित्त निगम हों, जिसके लिए यह विधेयक लाया गया है, अनेकबार हमारे सामने यही विचार आया है। मेरा आपसे अनुरोध है कि अब इस सभा का कार्यकाल लगभग समाप्त होने वाला है और नए चुनाव होने जा रहे हैं, अतः इस प्रकार की मौलिक मिसालें कायम की जानी चाहिए जिससे संसद द्वारा पारित किए गए कानून केअन्तर्गत स्थापित निगमों के कार्यकरण के बारे में इस सभा के अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति किसी संदेह की गुंजाइश न रहे। मुझेविश्वास है कि उक्त निगमों के कार्य-परिणामों को देखे बिना ही, विभिन राज्यों के इन तेरह औद्योगिक वित्त निगमों के कार्यचालन के संबंध में ऐसा कोई मुद्दा नहीं बचा होगा जिस पर इस सभा में वाद-विवाद न किया गया हो। मुझे खेद है कि गत सप्ताह इस सभा की सर्वसम्मत इच्छा को देखते हुए भी मेरे माननीय मित्र श्री गुहा विभिन्न वित्त निगमों के प्रतिवेदनों की प्रतियां प्राप्त करने और हमें ये प्रतियां उपलब्ध कराने में असमर्थ रहे, और अध्यक्ष महोदय, मुझे विश्वास है कि आप इस सिद्धान्त रूप से मामले की जांच करेंगे।

यह सरकार का उत्तरदायित्व है। और मुझे विश्वास है कि आप इसे लागू करेंगे, कि सरकार को पर्याप्त समय पूर्व सूचना परिचालित करनी होगी अथवा उन्हें उक्त मामले पर वाद-विवाद स्थगित करने की व्यवस्था करनी होगी। सदन इस पर चर्चा थगित करने पर सहमत हो जाएगा। वर्तमान परिस्थितियों में हमें उपलब्ध कराई गई अथवा स्वयं अपने प्रयासों में प्राप्त हुई ऐसी अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण सूचना से हम जो कुछ कर सकते हैं हमें करना होगा।

यह एक अच्छा उपाय है और मैं इसका खुले दिल से स्वागत करता हूं। यह वर्ष 1951 के अधिनियम में संशोधन करने का एक उपाय है लेकिन एक सतत् उपाय होने के कारण मेरा इस मुद्दे पर दृढ़ विश्वास है कि सरकार को ऐसे उपाय करने चाहिए तथा यह सुनिश्चित करने हेतु ऐसा निर्णय लेना चाहिए कि यदि विधेयक को एक बार संविधि-पुस्तक में सम्मिलित किया जाता है तो जिन निगमों को विधेयक के दायरे के अन्तर्गत स्थापित किया जायेगा। वे सुचारु रूप से कार्य करें और मेरा यह कहना है कि निगमों का कार्य भलीभांति नहीं चल रहा है। मैं चाहूंगा कि मेरे माननीय मित्र श्री गुहा इसके प्रतिकूल सभा में प्रमाण प्रस्तुत करें। एक अन्य स्थान पर सभा की समितियों में से एक समिति, जिसमें मुझे कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, यह प्रश्न पिछले महीने उठा था और अब मैं ऐसी सूचना का विश्लेषण करने का प्रयास कर रहा हूं। जो हमें सदन की उक्त समिति में अनुरोध करने पर प्राप्त हो पाई थी क्योंकि मैं समझता हूं कि यह 110 पृष्ठ का दस्तावेज जिसे मेरे माननीय मित्र ने मुझे तथा अन्य मित्रों को भेजने की कृपा की, उस रूप में सूचना उपलब्ध नहीं कराता जिस रूप में उस समय मांगी गई थी।

मैं सभा का ध्यान इन निगमों के पूंजीगत ढांचे की ओर दिलाना चाहूंगा। इस समय मेरे पास ग्यारह निगमों की सूचना है जबकि अब मैं देखता हूं कि कुल तेरह निगम हैं। जहां तक असम का सम्बन्ध है प्राधिकृत पूंजी 2' करोड़ रुपये हैं, निर्गमित पूंजी एक करोड़ रुपये है, राज्य सरकार की भागीदारी 50 लाख रुपए है, भारतीय रिजर्व बैंक की भागीदारी 15 लाख रुपए है और बैंक तथा बीमा कम्पनियों जैसे वित्तीय संस्थाओं की भागीदारी 30 लाख रुपए है।

उनके द्वारा स्टेट बैंक के बारे में दिए गए सुझाव के बारे में मैं कहूंगा कि निगम का पूंजीगत ढांचा मैं समझता हूं कि जिस सिद्धान्त पर आधारित है वह निरपवाड़ है अर्थात् पूंजीगत ढांचे का आधार व्यापक है। जिसमें पूंजीगत दायित्व कई स्कन्धों पर होता है। यही कारण है कि मैं पूंजीगत ढांचे का अध्ययान कर रहा हूं। अब असम के बारे में देखा जाये तो मैं समझता हूं कि अन्य निवेशकों की भागीदारी — जिसे मैं गैर-सरकारी निवेशकों की भागीदारी मानता हूं — 5 लाख रुपए है। उत्तर प्रदेश के मामले में प्राधिकृत पूंजी 3 करोड़ रुपए है, निर्गमित पूंजी 50 लाख रुपए है। राज्य की भागीदारी 18 लाख रुपए है। भारतीय रिजर्व बैंक की भागीदारी 7.5 लाख रुपए है, वित्तीय संस्थाओं की भागीदारी 19.5 लाख रुपए है तथा अन्य शेयरधारकों अर्थात गैर-सरकारी शेयरधारकों की पूंजी 5 लाख रुपए है। बिहार के मामले में प्राधिकृत पूंजी 2 करोड़ रुपए है, निर्गमित पूंजी 50 लाख रुपए है, राज्य की भागीदारी 20 लाख रुपए है, भारतीय रिजर्व बैंक की भागीदारी 7.5 लाख रुपए है, वित्तीय संस्थाओं की भागीदारी 175 लाख रुपए है और गैर-सरकारी शेयरधारकों की पूंजी 5 लाख रुपए है।

यहां कुछ परिवर्तन और सम्मिन्द्रण है लेकिन मैं वित्तीय निगमों की अलधिक संख्या, जिन्हें वर्ष 1953 से स्थापित करने की मांग की गई है, के पूंजीगत ढांचे से विभिन्न निगमों के लिए पूंजी का व्यापक आधार और पूंजी जुटाने का दायित्व के सिद्धान्त पर गौर करना चाहूंगा।

मैंने उक्त स्थिति के बारे में बताने के लिए जानबूझकर उत्तर प्रदेश और बिहार को चुना है क्योंकि ये हमारे देश में कुछ बड़े राज्य है। लेकिन यहां हम देखते हैं कि लगभग सभी राज्य निगम की शेयर पूंजी प्राधिकृत पूंजी की लगभग एक करोड़ रुपए है। मुझे प्राप्त सरकारी आंकड़ो के अनुसार यह पूंजी दो करोड़ रुपये में से 17.5 लाख रुपए से 54 लाख रुपए तक अर्धात् रुपए में पार आने तक होगी है यें समझता हूं कि बैंक तथा बीमा कम्पनियों जैसे संस्थागत निवेशकों ओर सरकारी निवेशकों के अंशदान को एक मात्र लिया गया तो राज्य सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के अलावा आधिक नहीं तो रुपए ये

पांच आने तक का पूंजी निवेश संस्थागत निकायों और गैर-सरकारी निवेशकों द्वारा होता है। मैं समझता हूं और मुझे विश्वास हो कि मेरे माननीय मित्र श्री ए०सी० गुहा मेरी इस बात का विरोध नहीं करेंगे—कि यह एक अत्यन्त उचित और उपयुक्त तरीका है जिसके अन्तर्गत किसी औद्योगिक बिल निगम के लिए शेयर पूंजी जुटाई जाती है।

ऐसी स्थिति होने के कारण इस सभा में यह सुचिश्चित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है कि इन संस्थाओं का प्रबन्ध भली भांति हो क्योंकि हम इनके लिए कानून बना रहे हैं और इसके अन्तर्गत ऐसे सक्षम अधिकार दिये जा कर रहे हों जिन के अन्तर्गत वित्तीय निगम स्थापित किये जायेंगे।

माननीय मित्र श्री बंसल द्वारा की गई टिप्पणियों में मुझे अत्यन्त रुचि थी लेकिन मैं समस्या पर इस विधेयक पर गौर करने की प्रक्रिया के संबंध में उनके द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण से थोड़ा भिन्न दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करूंगा।

अनुदान की बात की जांच — यह प्रश्न लाभांशों की गारन्टी से पैदा होता है — मैं श्री ए०सी० गुहा द्वारा परिचालित किए गए चार्ट में यह उक्ति देखता हूं:

"अनुदान लाभांश के प्रतिशत के रूप में दिया गया"

इनका भुगतान किसने किया? स्पष्ट रूप से राज्य सरकारों ने इनका भुगतान किया होगा। यदि राज्य सरकारों ने नहीं तो इनकी ओर से इनका भुगतान उस पूल में से किया गया होगा जिसमें सरकारों की तिथि संचित रहती है। यदि सरकार मेरी बात पर गौर करें तो मैं कुछ और आंकड़ें पढ़ूंगा। जिस प्रकार से उन तथ्यों के लिए, जिन्हें कार्यरूप नहीं दिया गया, सरकार से लाभांश सुनिश्चित करने की मांग की गई है वह आश्चर्यजनक है।

मैं आपको अभी एक बात बताऊंगा। क्योंकि मैंने देखा है कि मेरे कुछ मित्रों को इस तरीके पर थोड़ा आश्चर्य हुआ जिस तरीके से मैंने यह तथ्य प्रस्तुत किया क्योंकि मैंने कहा "उन तथ्यों के लिए जिन्हें वहां कार्यलय नहीं दिया गया"।

पंजाब के मामले में, पहले वर्ष दिया गया अनुदान भुगतान किए गए लाभांश का 93.3 प्रतिशत का, दूसरे वर्ष यह 53.7 प्रतिशत था और तीसरे वर्ष अर्थात् अन्तिम वर्ष में यह 47.7 प्रतिशत था। सौराष्ट्र के मामले में तीन वर्ष की अवधि के दौरान, जिसका मैं अब अध्ययन कर रहा हूं, राज्य द्वारा वित्त निगम को दिया गया अनुदान 80.1 प्रतिशत से 48.6 प्रतिशत के बीच रहा। बम्बई से मामले में यह प्रतिशत 92 से 69.4 और 54 के

बीच रहा। और इस प्रकार यह स्थिति चलती रही। मेरे पास मध्य प्रदेश का उदाहरण है जहां अनुदान शत-प्रतिशत रहा है।

इतना कहने के बाद में इस मुद्दे का अपने माननीय मित्र श्री बंसल द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण जिसे उन्होंने व्यय-अनुपात कहा, से भिन्न दृष्टिकोण अपनाकर अध्ययन करना चाहूंगा। मेरे माननीय मित्र ने हमें यहां कुछ आंकड़े प्रस्तुत किए है और इन आंकड़ों की पहले ब्रिटेन के समूचे व्यय-अनुपात के आंकड़ों से तुलना की तथा बाद में यहां औद्योगिक वित्त निगम से तुलना की।

यहां श्री ए० सी० गुहा द्वारा बड़ी विनम्रता से परिचालित किया गया विवरण है जिसे मैं संदित्व में उद्धृत कर रहा है। ये आंकड़े कुछ आय का प्रतिशत के रूप में प्रसासनिक व्यय के संबंध में है। पुनः तीन वर्ष की अवधि के दौरान जिसका यें पंजाब के संबंध में अध्ययन कर रहा था यह अनुदान 72.8 प्रतिशत से 31.5 प्रतिशत तक घटता बढ़ता रहा। सौराष्ट्र के मामले में यह 41 प्रतिशत से 16.3 प्रतिशत के बीच घटता-बढ़ता रहा जब कि बम्बई के मामले में यह प्रतिशत 63.4 से 23.5 के बीच घटता बढ़ता रहा। में इस बात को मानता हूं कि यह प्रतिशत घट रहा है। प्रथम वर्ष में अथवा द्वितीय या वृत्तीय वर्ष में व्यय अनुवर्ती वर्षों से अनुपातिक रूप से अधिक होगा। त्रवणकोर-कोचीन के मामले में, जिसे यहां राज्य वित्त निगम का एक अत्यन्त आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह प्रतिशत 34.8 सदे 12.2 तक घटती बढ़ती रही है।

इसके अलावा एक असाधारण उदाहरण भी है मध्य भारत के मामले में प्रथम वर्ष अनुदान 133.3 प्रतिशत था। दूसरे शब्दों में चाहे आप इसे पूंजीगत ढांचे के रूप में लें अथवा दिए गए लाभांश, अनुदान अथवा राज सहायता के रूप में लें इन संस्थाओं का कार्यकरण—इसमें अन्तर्ग्रस्त मुख्य सिध्दान्तों को ध्यान में रखकर ये वे सिध्दान्त है जिनके बारे मुझे यह कहते हुए खेद है कि अभी थोड़ी देर पहले मेरे माननीय मित्र श्री बंसल ने इस पर भली भांती और गौर नहीं किया। जिन पर, मुझे उम्मीद है कि मैं अभी कुछ ही क्षणों में चर्चा करुंगा। इस स्तर का नहीं रहा जिस पर हमें तत्काल या निकट भविष्य में विश्वास हो सके और इसके परिणामस्वरूप इस सभा में हममें से कुछ सदस्य, जिनका संबंध इस बात से था कि इन निगमों का प्रबंध किस प्रकार किया जाये — चाहे यह औद्योगिक वित्त निगम हो अथवा राज्य वित्त निगम — आंकड़े प्राप्त करने को उत्सुक रहते हैं और मुझे खेन है कि पिछली बार 36 वाद-विवाद पर मैंने खेद व्यक्त किया था कि मेरे माननीय मित्र — हमें आंकड़े उपलब्ध कराने में, जिसके कि हकदार हैं— मैं

यह नहीं कहता कि वे इच्छुक नहीं थे— असमर्थ रहे। मुझे उम्मीद है कि भविष्य में, जैसा कि अभी थोड़ी देर पहले उन्होंने वायदा किया है; ऐसी त्रुटि नहीं होगी।

यदि सभा उद्देश्यों और कारणों के विवरण की ओर ध्यान दे तो इसमें दो बहुत महत्वपूर्ण बातों का पता चलेगा। पैरा 2 में बताया गया है कि किस कारण से यह विधेयक लाया गया है अर्थात इसका उद्देश्य पृथक वित्त निगमों की स्थापना करने के संबंध मे कतिपय राज्यों को होने वाली कठिनाइयों को दूर करना था। यह एक छोटा सा मुद्दा है। इसके बाद पैरा 2 में हम आगे देखते हैं।

"इसमें अधिनियम की धारा 25 में संशोधन करने का भी प्रस्ताव किया गया है ताकि कुछ और कुटीर उद्योगों को जिनके पास पर्याप्त सुनिश्चित परिसम्पत्ति नहीं है; राज्य वित्त निगम से वित्तीय सहायता उपलब्ध हो सके।"

मैं पूछता हूं और यदि मेरी यह मान्यता गलत हो तो मैं अपने माननीय मित्र द्वारा बताये गये आधार पर सहमत होने को तैयार हूं, चाहे यह प्रमुख मुद्दा हो अथवा नहीं, जिसे आधार मानकर इस सभा के समक्ष यह संशोधन विधेयक लाया गया है। मैं इसे एक सकारात्मक तरीके से प्रस्तुत करूंगा। कुटीर एवं लघु उद्योगों की सहायता करने के उद्देश्य से यह विधेयक प्रवर्तित किया गया है ताकि राज्य में ऐसी प्रक्रियात्मक स्थिति कायम की जा सके जिससे प्रत्येक राज्य अपने अधिकार क्षेत्र में ही अथवा पड़ौसी राज्यों के साथ संयुक्त रूप से एक वित्त निगम स्थापित कर सके। दूसरे शब्दों में भारत सरकार द्वारा पंच वर्षीय योजना के रूप में यह सर्वोच्च कर्तव्य सम्पन्न किया गया और विशेषकर द्वितीय पंच वर्षीय योजना में इस सदस्य उपाय से कुटीर तथा लघु उद्योगों को प्रोत्साहित तथा स्थापित किया जा सका।

यदि यही स्थिति है, तो हम राज्य वित्तीय निगमों का कार्य कैसा रहा है? वे किस प्रकार ऋण दे रहे हैं? ऋण देने की उनकी शर्तें क्या हैं? उनकी वसूली किस प्रकार की जाती है? मैं इन तीन या चार मुद्दों पर आपको अनुमति में चर्चा करना चाहता हूं।

दस्तावेज के पृष्ठ 6 पर जिसे श्री ए० सी० गुहा ने हम में से कुछ को परिचालित किया है, सारी कहानी का पता लग जाता है।

आपकी अनुमति से मैं इस महत्वपूर्ण मसले की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। मुझे यह बात कहने में कोई खेद नहीं है कि उदेश्यों और कारणों के कथन में कहे गए अनुसार राज्य वित्तीय निगमो की स्थापना करने वाला यह विधेयक और इस विधेयक

के अधिकार क्षेत्र में कृत्यों से कुटीर एवं मझले उद्योगों को कोई सहायता नहीं मिलेगी क्योंकि ब्याज की दरें नितान्त अनुचित हैं। मुझे विभिन्न राज्य वित्तीय निगमों द्वारा वसूल किए जाने वाली ब्याज की दरों और उनकी वसूली के तरीके को जानकर अत्याधिक आश्चर्य हुआ। मैं दिए गए वक्तव्य में से ही उदाहरण दे रहा हूं—मैं ऐसा इस आधार पर कर रहा हूं क्योंकि वित्त मंत्रालय द्वारा जांच के सशर्त आशय का एक नोट भेजा गया है—यदि मैं गलत हूं, तो मुझे बता दिया जाए, मैं सही स्थिति स्वीकार करने को तैयार हूं।

मुझे विश्वास है कि यह कथन इस बात को महसूस करेगा कि श्री एस० सी० गुहा द्वारा परिचालित किए गए 110 पृष्ठ के नोट के पृष्ठ 6 पर दी गई। इन ब्याज की दरों पर मूल रूप से ऐसा कोई विवाद नहीं है कि यह दरें गलत दी गई हैं। पंजाब में वार्षिक ब्याज की दर 6 प्रतिशत है। सौराष्ट्र के मामले में यह 6 प्रतिशत है। बंबई में 6 प्रतिशत, त्रावनको-कोचीन में 6 प्रतिशत, हैदराबाद में 6 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 6 प्रतिशत, असम में 6 या 7 प्रतिशत है। बिहार में 6 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में $5^{1/2}$ प्रतिशत, राजस्थान में 6 प्रतिशत, मध्य भारत में 6 प्रतिशत और आंध्र में 6 प्रतिशत है।

मेरा पहला प्रश्न यह है कि चूंकि इस सदन ने यह कानून पारित किया था तो सारे देश में एक जैसी दरें क्यों नहीं लागू की गई? वित्त मंत्रालय भी इस मामले में भारतीय रिजर्व बैंक ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि देश के प्रत्येक भाग में जहां राज्य वित्त निगम कार्य कर रहा है, एक समान दर लागू हो, अपने प्रभाव का उपयोग क्यों नहीं किया? मेरा विचार है कि इस सदन को इसका उत्तर जानने का अधिकार है। आशा है कि मंत्री जी चर्चा का उत्तर देते समय एक प्रश्न का उत्तर भी देंगे।

परंतु यह मुद्दा बड़े मामले की तुलना में कम महत्वपूर्ण राज्य वित्त निगम पठान महाजनों की तरह कार्य क्यों कर रहे हैं? बैंक दर क्या है? बैंक दर और कुटीर तथा मझले उद्योगों से, जिनके हित के लिए इस देश में राज्य वित्त निगमों की स्थापना की गई है, वसूल की जाने वाली ब्याज की दर में कितना अन्तर है? कुटीर और मझले उद्योग इन अधिक ऊंची दरों पर अदायगी के लिए धन कहां ले जाऐंगे? मैं जानता हूं कि जर्मनी और जापान जैसे अन्य कई देशों में ब्याज की ऊंची दर का प्रावधान है; मैं उससे अवगत हूं परंतु मैं यह पूछता हूं कि इस देश की जैसी अनूठी आर्थिक व अन्य परिस्थितियों में क्या ब्याज की यह निश्चित दर को, जोकि $5^{1/2}$ प्रतिशत से 7 प्रतिशत तक है, उचित कहा जा सकता है? मैं राजस्व मंत्री से पूछता हूं कि क्या वह मुझे यह बता सकते हैं कि ब्याज की इन दरों के आधार पर कुटीर और मझले उद्योग इस देश में पनप सकते हैं? सरकार

का इतनी भारी आर्थिक सहायता देने का क्या उद्देश्य है, जिसके बारे में मैंने अभी आंकड़े उद्धृत किए थे। यदि ब्याज की दरें उचित नहीं हैं और गांवों के औसत लोगों की पहुंच के बाहर हैं, तो इस सहायता का क्या औचित्य है। यह महत्वपूर्ण सिद्धांतों की बातें हैं और इन प्रश्नों पर न केवल हम विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन के क्षेत्राधिकार में, जिसके बारे में मंत्री जी ने दस्तावेज हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है चर्चा होनी चाहिए, वरन् इस विधेयक को महत्वपूर्ण खंडों के परिणामों पर भी चर्चा होनी चाहिए।

अब मुझे आशा है कि यह चर्चा जारी रहेगी और सरकार यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगी कि इन दरों को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाए और इन दरों को नए सिरे से औचित्यपूर्ण बनाया जाए ताकि इन वित्त निगमों से ऋण आवेदन करने वाले आवेदक इस प्रकार ऋण प्राप्त कर सकें। मुझे यह कहते हुए खेद है कि वह अपने लाभ में से उसकी अदायगी कर सकें। जब तक ब्याज-दरों के इस अहम् मामले को निपटाया नहीं जाता, तब तक यह विधेयक जहां तक विधेयक के उदेश्यों और कारणों के कथन के पैरा 2 की शर्तों और श्री ए० सी० गुहा द्वारा दिए गए वक्तव्य का संबंध है, कुटीर उद्योगों और मझले उद्योगों के विकास में सहायक सिद्ध नहीं हो सकता।

प्रश्न के एक पहलू पर मैं अपने माननीय मित्र मंत्री जी से जांच करने का आग्रह करूंगा और हमें उसकी सूचना देने को कहूंगा। यहां मैं आपका मार्गदर्शन चाहूंगा। राज्य पुनर्गठन विधेयक पर संयुक्त समिति में जब सम्पत्ति और देयताओं के विभाजन के प्रश्न पर चर्चा हुई थी तो हम में से कुछ ने यह मामले उठाये थे। हमने जानकारी मांगी और हमने पाया कि और मुझे यह मालूम नहीं है कि हमें दी गई सूचना कहां तक सही है और वह एक वित्त निगम के बारे में है कि अभी तक ऋण के रूप में दी गई एक बड़ी राशि को माफ कर दिया गया है अथवा बट्टे खाते डाल दिया गया है। अब मैं अपने माननीय मित्र राजस्व मंत्री जी से यह बताने का आग्रह करूंगा कि अब तक किस दर पर निवेश की गई राशि को सबसे अच्छी निवेश समझा गया है, क्योंकि यह सदन इस बात को जानने का इच्छुक है और मुझे विश्वास है कि इस मामले में वह अवनूप अनुग्रहीत करेंगे।

मैं जो जानकारी एकत्र कर पाया हूं उसके अनुसार श्री ए० सी० गुहा द्वारा परिचालित किए गए नोट के अतिरिक्त मैं निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त कर पाया हूं। उन 11 निगमों में से जिनकी जानकारी मुझे मिल पाई है, कुल प्राधिकृत पूंजी 23 करोड़ रुपये की है और निगमित पूंजी 10.5 करोड़ रुपये है, राज्य सरकार का अंशदान 34.7 लाख रुपये, रिजर्व बैंक का भाग 1.40 करोड़ रुपये, राज्य वित्तीय निगमों का अंश लगभग 40 लाख रुपये

और अन्य निवेशकों का अंशदान लगभग 60 लाख रुपये है। निवेश के रूप में कुल राशि को लेना होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र श्री ए० सी० गुहा तत्काल इसकी जांच करने में कोई संकोच नहीं करेंगे, ताकि जब वह चर्चा कर उत्तर दें अथवा अन्य इस विधेयक के तृतीय वाचन के समय—हमारे पास अभी इसके लिए समय है—सदन को यह जानकारी मिल सके कि कितना धन गलत तरीके से निवेश किया गया है, कितने धन के ऋण बट्टे खाते के रूप में लगभग माफ कर दिये गए हैं।

मैं सरकार और गैर-सरकारी तौर पर की गई अपनी इस छोटी सी जांच के आधार पर जिसकी में पूर्ण जिम्मेदारी लेता हूं, यह कह सकता हूं कि अब तक ऋण के रूप में दी गई 50 से 60 प्रतिशत तक की राशि माफ की जा सकती है, क्योंकि उसकी वसूली नहीं हो सकती है। यदि मैं गलत हूं तो मैं माननीय मित्र श्री ए० सी० गुहा से आग्रह करता हूं कि वह सही स्थिति बतायें। यदि राज्य वित्त निगमों की यह स्थिति है तो भविष्य में कार्यकरण की दृष्टि से और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे ठीक से कार्य करें उन पर सख्ती हो; इसके लिए कानूनी उपबन्ध करने में इस सदन के कर्त्तव्य और दायित्व क्या हैं?

मैं इस अवसर पर कोई राजनीतिक भाषण देना नहीं चाहता हूं, परन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहूंगा कि विभिन्न राज्य वित्त निगमों द्वारा जिस प्रकार से आवेदनों का निपटारा किया जाता है उसके बारे में तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत सरकार जिनके पास इस विधेयक के उपबन्धों के अंतर्गत और वर्ष 1951 के अधिनियम के उपबन्धों में भी इतनी व्यापक शक्तियां अभी विद्यमान हैं, राज्यों को यह निदेश दे सकती है कि वे यह सुनिश्चित करें कि पक्षपात का कोई मामला न हो। मैं ऋण मंजूर करने के बारे में कुछ नहीं कहूंगा।

मुझे मेरे राज्य के बारे में कुछ अनुभव हुए हैं। हालांकि यह राज्य 1953 में अस्तित्व में आया और उससे पूर्ण यह मद्रास का भाग था। जब कभी भी कोई आवेदन किया गया, वह आवेदन कई शर्तों के कारण नहीं अटक जाता है—मैंने यह शब्द जानबूझ कर उपयोग किया है।आवेदन करने और ऋण मंजूर होने के बीच इतने अधिक लोग हैं, इतने मध्यस्थ है, कि उसके परिणामस्वरूप उन उद्योगों की जिनकी कुटीर और लघु क्षेत्र में स्थापना की जाती है, सहायता करने का मूल उदेश्य कभी पूरा नहीं हो पायेगा, चाहे आवेदनकर्त्ता कितना ही उपयुक्त पात्र क्यों न हो।

अतः जब यह कदम इस प्रकार का कोई विधेयक पारित करे तो मंत्री द्वारा सदन को

इस आवाम का आश्वासन दिया जाना चाहिये, कि भारत सरकार केवल विधेयक पारित करके, इसे कानून की किताबों में शामिल करने तक ही सीमित नहीं रह जायेगी तथा राज्य वित्त निगमों को अपनी मनमानी नहीं करने देगी। अन्य शब्दों में, किसी प्रकार का कोई तंत्र बनाया जाना चाहिए, ताकि (क) रिजर्व बैंक — मैं जानता हूं वहां इसके लिए उपबन्ध हैं; परन्तु मेरे विचार से वे पर्याप्त नहीं हैं — (ख) भारत सरकार — वहां भी उपबन्ध (ग) यह संसद राज्य वित्तीय निगम किस प्रकार कार्य कर रहे हैं, इसकी पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सके।

अंत में, मैं कहता हूं कि यदि भारत सरकार का यह उद्देश्य है तो मुझे विश्वास है कि इस उद्देश्य के संबंध में, लघु उद्योगों की सहायता के बारे में सारे सदन में कोई विरोध नहीं होगा और भगवान के लिए ऐसा उपाय कीजिए, जो उनकी पहुंच के भीतर हो। पठान महाजनों की तरह मत बनिए और इन वित्तीय निगमों को $5^{1/2}$ प्रतिवात से 7 प्रतिवात तक की ही ब्याज की दर वसूल करने दीजिए।

6

सार्वजनिक निगमों पर संसदीय नियंत्रण*

मैं, सरकारी निगमों पर संसदीय नियंत्रण से संबंधित विषय पर यह चर्चा इसलिए उठा रहा हूं क्योंकि यह आवश्यक है। यह कोई शिक्षा संबंधी वाद-विवाद नहीं है और न ही मैं किसी भावना के वशीभूत होकर या केवल वाद-विवाद के लिये बोल रहा हूं।

मैं यह कह रहा था कि मेरा इरादा विभागों की तुलना में मंत्रियों के हाथ मजबूत करने और इससे भी अधिक गत कुछ वर्षों के दौरान असितत्व में आए सरकारी निगमों के कार्यकरण की जांच-पड़ताल करने के लिये लोक सभा की सक्षमता के प्रति व्यक्त किये जा रहे संदेह दूर करने का है। इस वाद-विवाद का संबंध किसी मंत्रालय विशेष से नहीं है। मैंने ऐसे 9 मंत्रालयों की सूची बनाई है—संभवतः एक या दो मंत्रालय भी हो सकते हैं। जो विचाराधीन प्रश्न से संबंधित हो सकते हैं। इस समय चल रहे वाद-विवाद का संबंध उत्पादन मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय, सिंचाई मंत्रालय, परिवहन मंत्रालय, संचार मंत्रालय प्राकृतिक संसाधन और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय और यहां तक कि पुनर्वास मंत्रालय से है। चर्चा को अत्यधिक महत्व देने के लिये मैंने विशेष रूप से उन निगमों और कम्पनियों की सूची बनाई है जिनके लिये उत्पादन मंत्रालय जवाबदेह है:—सिन्दरी फर्टीलाईजर्स एण्ड कैमिकल्स, पैनीसिलीन फैक्टरी, डी०डी०डी० फैक्टरी ड्राई कोर केबिल फैक्टरी, जालाहल्ली हिन्दुस्तान शिपयार्ड। इस चर्चा के दायरे में आने वाले निगमों और कम्पनियों की सम्पूर्ण सूची देने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मैंने यह सब केवल इसलिये कहा है जिससे कि इस अत्यधिक महत्व की बाद पर ध्यान आकर्षित किया जा सके कि इन कम्पनियों के संचालन में भारी मात्रा में राष्ट्रीय संसाधन—भारी धनराशि लगी हुई है।

जब से भारत ने राष्ट्रीयकरण और मिश्रित अर्थव्यवस्था की घोषणा की है, तब से विभिन्न निगमों और कम्पनियों का उद्‌भव हुआ है। सर्वप्रथम तो, इनमें एक ऐसी श्रेणी है जिसमें सरकार को सारा धन, अर्थात् करदाताओं का धन लगाना पड़ता हैं और वे निगम अथवा

*सरकारी निगमों पर संसदीय नियंत्रण के संबंध में 10 दिसम्बर, 1953 को हुए लोक सभा वाद-विवाद से। का० 1901, 1904-19, 1925, 1926, 1969।

कम्पनियां हैं, दामोदर घाटी निगम, हीराकुंड, सिन्दरी फर्टीलाईजर्स, हिन्दुस्तान केबिल, हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट आदि। दूसरी श्रेणी में वे निगम और कम्पनियां हैं जिनमें आंशिक रूप से सरकारी निवेश, करदाताओं के धन के रूप में किया गया है और आंशिक निवेश गैर सरकारी धन के रूप में किया गया है। उदाहरण के रूप में दो का नाम मैं बता सकता हूं, वे हैं—हिन्दुस्तान शिपयार्ड और टाटा लोकोमोटिव एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी। अन्तिम रूप से एक और दृष्टिकोण से इनकी एक तीसरी श्रेणी भी है अर्थात् यह श्रेणी उन प्रतिष्ठानों की है जो अधिकांशतः कम्पनी विधि के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं हैं जैसे चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स तथा रक्षा मंत्रालय की आयुध फैक्ट्रियां जो बिल्कुल भी स्वायत्तता प्राप्त संस्थायें नहीं है बल्कि वे पूर्ण रूपेण विभागीय संस्थायें हैं। मैंने इस बात का पता लगाने की चेष्टा की है कि इन सभी निगमों में अनुमानतया कितना सरकारी धन लगा हुआ है किन्तु मुझे खेद है कि मैं प्राधिकृत रूप से अद्यतन आंकड़े नहीं प्राप्त कर सका हूं। मैं इनमें से कुछ निगमों के संबंध में नीचे कुछ आंकड़े उद्धरित कर रहा हूं जो मेरी बात को स्पष्ट करते हैं:—

भाखड़ा-नांगल (जुलाई 1953)	51 करोड़ रुपये
दामोदर घाटी निगम (सितम्बर, 1953)	47.45 करोड़ रुपये
हीराकुंड (सितम्बर, 1953)	25.48 करोड़ रुपये
हिन्दुस्तान शिपयार्ड	योजना आयोग के 14 करोड़ रुपये को विनियोजन में से 3 से 4 करोड़ रुपये व्यय किये जा चुके हैं।
सिन्दरी फर्टिलाईजर्स एण्ड कैमिकल्स	27 करोड़ रुपये

शीघ्र ही एक इस्पात संयंत्र स्थापित होने वाला है और इसकी अनुमानित लागत 80 करोड़ रुपये है। दूसरे शब्दों में सार्वजनिक धन के लगभग 400 या 500 करोड़ रुपये इन संस्थाओं के पूंजीगत ढांचे में लगे हुए हैं।* इन सभी निगमों और कम्पनियों का एक सा पैटर्न नहीं है और मैं इस समस्या के संबंध में सामान्य दृष्टिकोण अपनाने की चेष्टा कर रहा हूं तथा मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि इसका एक बोर्ड बना हुआ है और इन परियोजनाओं से अनेक प्रान्तीय सरकारें और यदा-कदा भारत सरकार सम्बद्ध रही है।

---

*तथापि माननीय सदस्य द्वारा दिये गये ये आंकड़े वित्त मंत्री द्वारा ठीक कर दिये गये थे। वित्त मंत्री द्वारा ठीक कर दिये आंकड़ों को सदस्य ने साभार स्वीकार कर लिया है।

एक और दृष्टिकोण से यह समस्या बहुत ही लुभावनी रही है। दामोदर घाटी निगम और भाखड़ा-नांगल बांध की सहायता के लिये अमरीका ने, टेलीफोन उद्योग लि० के लिये इंग्लैण्ड ने, इस्पात संयंत्र के लिये जर्मनी ने, शिपयार्ड के लिये फ्रांस और अम्बरनाथ मशीन टूल्स फैक्टरी के लिये स्विटजरलैंड ने पहल की थी। मैं यह बताना चाहता हूं कि किस प्रकार इन निगमों और कम्पनियों को सर्वप्रथम निगमित क्षेत्र में लाया गया। मुझे विस्तार में जाने का अवसर नहीं मिलेगा किन्तु यह स्पष्ट है कि केन्द्र तथा भारत के अन्य स्थानों में, विभागीय अध्यक्षों को प्रारम्भिक वार्ता का कार्य सौंपा जाता है और इन नियमों तथा कम्पनियों के लिए प्रारम्भिक प्रारूप तैयार किया जाता है। मैं मनोरंजक घोटालों का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं समझता क्योंकि इसके बारे में देश के लोगों को भलीभांति विदित है कि विदेशी फर्मों आदि के साथ प्रारम्भिक संबद्धता स्थापित करने तथा इस निगम के निगमित क्षेत्र में आने से पूर्व ही विदेशी उपकरण की खरीद के सिलसिले में सरकारी कर्मचारियों को किस प्रकार आये दिन विदेश जाना पड़ा था। मैं यही बात स्पष्ट करना चाह रहा हूं। आरम्भ से ही मैंने देखा है इनमें सामान्य तौर पर, किन्तु विशेष स्थिति को छोड़कर मंत्रीगणों की सम्बद्धता कहीं भी परिलक्षित नहीं होती। और मैं केवल यही कहना चाहूंगा कि यह चर्चा में प्रमुख रूप से इस मामले से सम्बद्ध है। देशी कानून के अन्तर्गत अथवा कार्यकारी कार्यवाही के अन्तर्गत एक बार इनके निगमित बन जाने के बाद ये अधिकारीगण इन पर सरकारी नियंत्रण रखने के लिये पूरी तरह से निरंकुश बन जाते हैं और सार्वजनिक आलोचना से बेअसर हो जाते हैं तथा जिस प्रकार इनमें पदों पर नियुक्ति की जाती है, उसके बारे में, मुझे विश्वास है कि यह सदन कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकता। मुझे खाद्य मंत्रालय के एक प्रमुख भारतीय सिविल सेवा अधिकारी के मामले की जानकारी है जो अब जहाज बना रहा है। मुझे एक और मामले की भी जानकारी है जिसमें एक अधिकारी अभी तक तो सिन्दरी फैक्टरी का प्रभारी था, जो उस समय सचिवालय में आया ही था और जो अब राज्य सरकार के राजस्व बोर्ड के सदस्य के रूप में आराम से बैठा हुआ है। ये सब घटनायें केवल एक वर्ष में घटी हैं। एक मामला विदेश मंत्रालय के महासचिव से सम्बद्ध है जो चेयरमैन हैं।

प्रारम्भ से ही ये निगम तदर्थ आधार पर सरकारी अधिकारियों द्वारा संचालित किए जा रहे हैं और न तो मंत्रालय और न ही सदन को इनके बारे में सही स्थिति का पता है और हम भी इस मामले में अनभिज्ञ हैं।

यह कम्पनियां और निगम वाणिज्यिक प्रबंधन के सिद्धान्तों एवं अर्थव्यवस्था तथा कार्यक्षमता का विचार किए बिना चलाई जा रही हैं। इन संस्थानों के वृहद् व्यापारिक हितों

में करोड़ों रुपया लगा हुआ है। सैंकड़ों और करोड़ों रुपये के निवेश वाले इन संस्थानों के प्रबंध मण्डल आजकल अति महत्वपूर्ण हो गए हैं। लोक लेखा समिति है परन्तु यह व्यय कम होने के शायद दो या तीन वर्ष पश्चात् मामला हाथ में लेती है और जांच-पड़ताल करती है। प्राक्कलन समिति भी है जिसका मैं भी दो वर्ष तक सदस्य रहा हूं और अब तक हम किसी ऐसे निगम अथवा कम्पनी का एक भी मामला प्रारम्भ नहीं कर सके जिसे भारत सरकार ने निगमित किया हो। मैं इसका जिक्र केवल इसलिए कर रहा हूं कि लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति के पास ने तो समय है और न ही ऐसा कोई अवसर है जिससे वे इन समस्याओं को हल करने का कार्य कर सकें। संक्षेप में, मैं यह कहना चाहता हूं कि लोक लेखा समिति ने इस संबंध में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान किया और मैं लोक लेखा समिति द्वारा की गई सिफारिशों को शीघ्र ही उद्धृत करूंगा। वास्तविक स्थिति यह है कि इन समितियों के पास अत्यधिक कार्यभार है और इनके पास इन प्रश्नों का पूरी तरह से हल ढूंढने का न तो समय है और न ही अवसर।

मैं सिन्दरी उर्वरक के संदर्भ में दिनांक 16 नवम्बर, 1953 को दिए गए प्रश्न के उत्तर के बारे में, जो कि नीचे दिया गया है एक बात कहना चाहूंगा। प्रश्न सिन्दरी फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स लि० द्वारा किए गए समझौते के बारे में सूचना देने में सरकार की अरुचि के बारे में था—

> "विधि के अंतर्गत यह अधिकार केवल अंशधारियों में ही निहित नहीं है। अंशधारियों को जो कुछ बताया जाता है वह मामले के गुणावगुण के अनुसार और कम्पनी की अन्तर्नियमावली के नियमों की परिधि में निदेशकों द्वारा प्रयोग किए गए स्वविवेक पर निर्भर है। एक महत्वपूर्ण विचार यह है कि जहां अंशधारियों को कम्पनी के कार्य-कलापों के संबंध में जानकारी दी जानी चाहिय वहीं ऐसी किसी बात की जानकारी नहीं दी जानी चाहिए जिसका कम्पनी के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पडता हो।"

सिन्दरी फैक्ट्री के हमारे अंशधारी कौन हैं? राष्ट्रपति जी प्रमुख अंशधारी हैं और संबंधित मंत्रालय के सचिव भी केवल एक ही अंश का धारक है। प्रधानमंत्री जी ने इस बारे में अपना मत व्यक्त किया था। मैं दिनांक 16 नवम्बर, 1953 को इस सदन में वाद-विवाद में अंतर्विष्ट उनके वक्तव्य उद्धृत कर रहा हूं—

> "सरकार ऐसे मामलों में आपके मार्गनिदेश लेती है। स्वायत्तशासी संगठन और केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के संगठन अपने दैनिक कार्यकलापों में करार और

> प्रतिज्ञान करते हैं और सामान्यतया सरकार इसमें हस्तक्षेप नहीं करती है। दूसरी ओर उन्होंने यह कहा कि यह सदन किसी भी मामले में हस्तक्षेप कर सकता है और किसी को भी इस सदन द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के अधिकार को चुनौती नहीं दी है। यह इस प्रकार के छोटे-छोटे मामलों के औचित्य और वांछनीयता का प्रश्न है".....

और इसमें किन मामलों का हवाला दिया जाता है? मैंने उनकी सूची बनाई है: सिन्दरी फर्टीलाइजर्स द्वारा मैसर्स कार्लीस्टिल के साथ कोयला भट्टी संयंत्र की स्थापना का समझौता किया जाना, जिसमें भारी धनराशि अंतर्ग्रस्त है और दूसरा मैसर्स एशालिएटिडसीयन कम्पनी लि० के साथ प्रतिवर्ष "स्लेज" की बिक्री के लिए समझौता जिसमें भी भारी धनराशि अन्तर्ग्रस्त है। अब, इस स्तर पर अध्यक्ष महोदय ने हस्तक्षेप किया था परन्तु इस मामले में आप विस्तृत विनिर्णय देने के लिए तैयार नहीं थे। मैं इसका संदर्भ वाद-विवाद प्रक्रिया कुछ प्रक्रिया अपनाने में सदन के अधिकार, सक्षमता और वांछनीयता के संबंध में और इन निगमों के कार्यकलापों के बारे में भी संगतता के कारण दे रहा हूं। आपने जो उत्तर दिया था, मैं उसे उद्धत कर रहा हूं:—

> "परन्तु मेरी प्रतिक्रिया यह है कि किसी विशेष स्वायत्तशासी निगम के प्रशासन की यह समीक्षा करने के लिए कि वह ठीक ढंग से चलाया जा रहा है अथवा नहीं, इस सदन को वह समस्त सूचना प्राप्त करने का हक है जो इसके लिए उचित रूप से आवश्यक है। परन्तु प्रतिदिन होने वाले अथवा बहुत छोटे-छोटे मामलों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा गया है ताकि किसी निगम की स्वायतता में हस्तक्षेप न हो।"

मैं यह स्पष्ट करना चहता हूं कि कोई भी व्यक्ति इन निगमों के दैनिक कार्यकलाप अथवा अन्य किसी छोटे मामले में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है। प्रश्न उत्तरदायित्व का है—न केवल तकनीकी वरन् राजनीतिक एवं संवैधानिक उत्तरदायित्व भी। यह एक महत्वपूर्ण मामला है।

आइये, हम इसकी संवैधानिक स्थिति की समीक्षा करें। मेरे विचार से इस सम्मानित सदन और सामान्यतया संसद द्वारा पारित कानूनों द्वारा शामिल किए कुछ निगमों के अतिरिक्त ये निगम मंत्रीमंडल द्वारा लिए गए निर्णयों के परिणामस्वरूप ही स्थापित किए गए हैं। अन्य शब्दों में इन्हें कार्यकारी आदेशों द्वारा स्थापित किया गया

है जिसमें संसद की कोई मंजूरी नहीं ली गई है। मैं यहां संविधान के उस अनुच्छेद का हवाला दे रहा हूं जो कि इस चर्चा के लिए संगत है। अनुच्छेद 114(3) में कहा गया है:—

"भारत की संचित निधि में से इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अनुसरण में पारित कानून द्वारा किए गए विनियोजन के अलावा कोई धन नहीं निकाला जाए:—

तत्पश्चात्, अनुच्छेद 266(3) में कहा गया है:—

"भारत की संचित निधि अथवा राज्य की संचित निधि में से कोई भी धन संविधान में बताये गए अनुसार और उसके लिए बनाये गए कानून के अलावा किन्ही भी प्रयोजनों के लिए विनियोजित नहीं किया जा सकता है।"

आज मेरे तर्क का मुख्य मुद्दा यह है कि इनमें से अधिकतर निगमों और कम्पनियों के मामलों में इन दोनों अनुच्छेदों का पालन नहीं किया गया है। यह एक व्यापक वक्तव्य है परन्तु मैं इसकी पुष्टि के लिए तैयार हूं।

प्राक्कलन समिति और लोक लेखा समिति की जांच के संबंध में, मैं वर्ष 1951-52 के लिए प्राक्कलन समिति के पांचवे प्रतिवेदन को उद्धृत कर रहा हूं जिसमें दामोदर घाटी निगम के संबंध में कहा गया है। प्रतिवेदन के पैरा 46 में कहा गया है:—

"समिति महसूस करती है कि निगम का वर्तमान प्रशासनिक और वित्तीय ढांचा अपूर्ण, अयुक्तिसंगत और आलोचनापूर्ण है।"

इसके अलावा, इसी प्रतिवेदन के पैराग्राफ 105 में, समिति ने कहा है कि:

"पूरी स्थिति ही संतोषजनक नहीं है। दामोदर घाटी निगम का स्वायत्त स्वरूप असीमित है। दामोदर घाटी निगम ने अपने स्वायत्त स्वरूप का असीम प्रयोग किया है और सरकार या प्राधिकरण की राय की उपेक्षा की है। यद्यपि सरकार के पास इसे सीमित करने की आवश्यक शक्तियां हैं, तथापि वे इसे सीमाओं में रख पाने में असफल रही है।"

प्राक्कलन समिति के प्रतिवेदन के पश्चात् क्या हुआ? संबंधित मंत्रालय ने एक तदर्थ समिति का गठन किया। इसकी अध्यक्षता श्री पी० एस० राव ने की। मेरे पास 14 जुलाई के अधिकांश समाचार पत्रों में प्रकाशित तत्संगत दरें हैं। प्राक्कलन समिति, इस सदन का मुख्य संवैधानिक अंग है जोकि वित्तीय नियंत्रण रखने और मितव्ययिता और कार्यकुशलता रखने का कार्य करती है। तथापि, इस माननीय सदन में प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने के

पश्चात् अधिकारियों की एक छोटी सी समिति का गठन किया गया। उस तदर्थ समिति का यह निर्णय और चुनौती है। मैं उसे उद्धृत कर रहा हूं:

"नदी घाटी योजनाओं के प्रभारी संवैधानिक निगमों पर पूर्ण संसदीय नियंत्रण से उनकी स्थिति सरकारी विभागों से भी बुरी होगी।"

मैं लोक लेखा समिति के तीन निष्कर्षों को उद्धृत करना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि आज की चर्चा में ये महत्वपूर्ण हैं। वर्ष 1950-51 की लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन के पैरा 7 में कहा गया है कि:

"हम महसूस करते हैं कि सरकार की यह धृति है कि सभी प्रकार की योजनाएं, बिना आयोजना या प्रशासनिक या लेखा विभागों में पर्याप्त तकनीकी कर्मचारियों की आरम्भिक या नियमित सप्लाई को सुनिश्चित बनाए ही, आरम्भ की जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप भ्रांति पैदा होती है। वाणिज्यिक लेखा सिद्धान्तों का सही मूल्यांकन न किए जाने से यह भ्रांति और भी अधिक हो जाती है।"

इसी प्रतिवेदन के पैरा 8 में, लोक लेखा समिति ने कहा है और मैं उद्धृत कर रहा हूं:

"हम नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के इस मत से सहमत हैं कि संविधान में निगम की स्थापना के संबंध में उनके कार्यों और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।"

इसके बाद लोक लेखा समिति का वर्ष 1952-53 का तीसरा प्रतिवेदन आता है। वास्तव में यह एक उपसमिति की रिपोर्ट है। इसकी अध्यक्षता मेरे माननीय मित्र, आचार्य अग्रवाल ने की। इस रिपोर्ट को लोक लेखा समिति ने स्वीकार और अनुमोदित किया है। इसमें कहा गया है कि:

"उपसमिति सरकार की सरकारी औद्योगिक उपक्रमों को प्राइवेट लिमिटेड कंम्पनियों, जिनमें प्रेसिडेंट और एक या अधिक अधिकारी अंशदाता होते हैं, के औचित्य पर संदेह व्यक्त करती है। इस प्रकार की कार्यवाही से, न केवल संसदीय नियंत्रण कम होता है, बल्कि नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के लेखा परीक्षा नियंत्रण पर भी जिसे उपसमिति संसद के प्रति आवश्यक समझती है, प्रतिकूल असर पड़ता है।"

अंत में, सौभाग्यवश, इन निगमों और कम्पनियों के प्रबंधन के बारे में नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के विचार हमारे सामने हैं। मैं नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा

13 दिसम्बर, 1952 को लोक लेखा समिति की उपसमिति के समक्ष दिए गए वक्तव्य को, जो लोक लेखा समिति के मुख्य प्रतिवेदन में सम्मिलित है, उद्धृत करता हूं:

"मेरे विचार से ये प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियां कम्पनी अधिनियम और संविधान में एक धोखा है क्योंकि सरकार में प्रेसिडेंट या सचिव के नाम पर समेकित निधि से किसी विशेष कम्पनी की प्राइवेट कम्पनी के रूप में स्थापना अथवा परिवर्तन के लिए धनराशि नहीं निकाली जा सकती है। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत व्यक्तियों के समूह द्वारा कम्पनी स्थापित की जा सकती है। सरकार में प्रेसिडेंट या सचिव कोई एक व्यक्ति नहीं है। इन अधिकारियों का कम्पनी में कोई व्यक्तिगत वित्तीय हित नहीं है और वास्तव में इनके शामिल होने से कम्पनी की परिभाषा के अन्तर्गत इसका गठन भी नहीं होता है। इसके अतिरिक्त कार्यपालिका द्वारा एक सरकारी कम्पनी को प्राइवेट कम्पनी में बदलना असंवैधानिक है। इस बात को मानते हुए कि औद्योगिक और व्यापारिक कम्पनियों का प्रबंध, प्रशासनिक दृष्टि से सामान्य दिन-प्रति-दिन की गतिविधियों से भिन्न होता है और विशेष संगठन और शक्तियों का प्रत्यायोजन, व्यापारिक कार्य के शीघ्र निपटान के लिए आवश्यक हो सकता है। सरकार को निगमों की स्थापना के लिए, उपयुक्त संसदीय अधिनियमन का आवश्यक समर्थन प्राप्त होना चाहिए।"

इसमें अन्य मुद्दा भी अन्तर्ग्रस्त है, जोकि नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के वक्तव्य का भाग है। इसमें कहा गया है कि:

"प्राइवेट कम्पनी की स्थापना से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा है। भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत, प्राइवेट कम्पनियों की लेखा परीक्षा, निदेशकमंडल द्वारा नामित लेखा परीक्षकों द्वारा की जाती है। अतः नियंत्रक और महालेखा परीक्षक को स्वयं ही ऐसी कम्पनियों के लेखों की लेखा परीक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि उसको लेखा परीक्षा का अधिकार ही नहीं है।"

"यह सत्य है कि कम्पनी यदि आवश्यक समझे तो कम्पनी के अन्तर्नियमों में उचित उपबन्ध कर उससे लेखा परीक्षा के लिए अनुरोध कर सकती है लेकिन यह....." कुछ निगम इस प्रकार से महालेखा परीक्षक की सेवाएं लेती हैं।

"लेकिन यह न तो सही है न ही आवश्यक है। क्योंकि महालेखा परीक्षक के कृत्य और कर्तव्य संसद द्वारा निर्धारित होते हैं और किसी कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा नियंत्रित नहीं होते हैं। तथापि, अगर वह सहमति के आधार पर फीस की अदायगी

के आधार पर यह कार्य करता भी है, तो वह अपनी लेखा परीक्षा रिपोर्ट कम्पनी को ही प्रस्तुत कर सकता है। राष्ट्रपति के माध्यम से संसद को नहीं। ऐसी किसी भी कम्पनी के कार्य और वित्तीय परिणामों पर संसद लोक लेखा समिति द्वारा नियंत्रण नहीं रख सकती। ये टिप्पणियां उन प्राइवेट कम्पनियों पर भी लागू होती हैं, जिनमें सरकार का पर्याप्त पूंजी निवेश है या जिनमें उसने घाटे के प्रति गारंटी दी हुई है।"

अन्त में महालेखा परीक्षक ने कहा है कि:

"मैं इन सभी मामलों में अपनाई गई सभी प्रक्रियाओं को असंवैधानिक और गैर कानूनी मानता हूं। मेरा यह मानना है कि मुझे कम्पनियों की लेखा परीक्षा का अधिकार है, ताकि निधियों के गलत अपवर्तन के आधार पर वे मेरी लेखा परीक्षा जांच से बच न सकें।"

यह अपवर्तन भारत की समेकित निधि से हो सकता है। उन्होंने आगे कहा है कि:

"मैं कहना चाहता हूं कि कार्यापालिका द्वारा इस प्रकार की कम्पनियों के गठन पर अमेरीका में पूर्णतया प्रतिबंध है और कांग्रेस ने इस मामले में विशेष रूप से विधान बनाया है।"

यह भारत में सरकारी उपक्रमों और कम्पनियों के प्रबन्ध और कार्यों के संबंध में स्थिति अथवा विवाद का सांघातिक प्रहार है।

जब से इंग्लैंड ने राष्ट्रीयकरण को अपनाया, और लेबर सरकार के शासन में राष्ट्रीयकरण से भी पहले यह राष्ट्रीय नीति का एक प्रमुख मुद्दा बन चुका था—हाऊस आफ कामन्स को इन मामलों पर काफी अनुभव प्राप्त हो गया था। ऐसा हुआ कि दिसम्बर, 1951 में हाऊस ऑफ़ कामन्स ने राष्ट्रीयकृत उद्योगों के मामले की जांच हेतु एक चयन समिति नियुक्त की थी। समिति ने दो प्रतिवेदन प्रस्तुत किये थे। दूसरे प्रतिवेदन में, जोकि अत्यन्त महत्वपूर्ण है और वर्तमान प्रयोजन से संगत है, निम्नलिखित सिफारिश की गई थी, अर्थात हाऊस आफ कामन्स की एक स्थाई समिति का गठन किया जाये जिसके पास ब्रिटेन में राष्ट्रीयकृत उद्योगों का प्रबन्ध करने वाले सरकारी उपक्रमों की ने केवल वर्तमान और गत दोनों वित्तीय इमानदारी और स्थिरता बल्कि भावी योजनाओं और कार्यक्रमों अर्थात गत और भावी दोनों की जांच करने की शक्ति हो, एवम् यह उसका दायित्व हो। हाउस ऑफ़ कामन्स की चयन समिति ने सिफारिश की कि "हाउस आफ कामन्स की एक नई समिति गठित की जाये तो लोक लेखा समिति से इन राष्ट्रीयकृत उद्योगों की जांच करने का कार्य संभाले"। इसने यह भी सुझाव दिया कि राष्ट्रीयकृत

उद्योगों सम्बन्धी प्रस्तावित समिति में नियंत्रक महालेखा परीक्षक स्तर का एक अधिकारी तथा कम से कम एक व्यवसायिक लेखाकार सम्मिलित किया जाना चाहिए। चयन समिति की सिफारिशों के अनुसार प्रत्येक उपक्रम को वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित करने चाहिए जिसमें "इसमें अपनी स्थापना के दिन से अपने उत्पादों की औसत उपभोक्ता लागत अथवा समग्र रूप से अपनी सेवाओं में कमी अथवा वृद्धि की प्रतिशतता का उत्कृष्ट अनुमान, जो वह लगा सकती है", सम्मिलित किया जाना चाहिए।

युनाइटेड किंगडम की कुल मिलाकर स्थिति यह है। मैं एक और बात का उल्लेख करना चाहूंगा। आज भारत में इनमें से प्रत्येक उपक्रम चाहे वह रक्षा सेवाओं से जुड़ा है, उत्पादन मंत्रालय से जुड़ा है अथवा किसी अन्य मंत्रालय से जुड़ा है—एक एकाधिकार उद्योग बन गया है, एक ऐसा एकाधिकार उद्योग जिसमें प्रतिस्पर्धा नहीं है, चाहे वह सिंदरी में उर्वकों का उत्पादन कर रहा हो अथवा विशाखापत्तनम के शिपयार्ड में जलपोतों का निर्माण कर रहा हो या बंगलौर में टेलीफोनों का उत्पादन कर रहा हो या फिर विभिन्न आयुध कारखानों में आयुध सामग्री उत्पादन कर रहा हो। इस बारे में बिल्कुल प्रतिस्पर्धा नहीं है। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता के हित को बिल्कुल भुला दिया गया है। मैं इस बात को और स्पष्ट करना चाहूंगा। प्रत्येक उद्योग अपने क्षेत्र में सर्वोच्च बन गया है, लघु साम्राज्य, जिसका कुल स्वामी प्रबन्ध निदेशक अथवा चेयरमैन पद का अधिकारी होता है। जहां तक इन अधिकारियों का प्रश्न है मेरी किसी से कोई लड़ाई नहीं है। परन्तु राष्ट्रीय हित में (क) मंत्री का नियंत्रण प्रभावी बने—व्यक्तिगत अनुभव से पता लगाये कि शिपयार्ड में क्या हो रहा है, ऐसा नहीं है, और (ख) इस सदन का अधिकार बना रहे, सुनिश्चित करने हेतु तुरन्त कुछ किया जाना चाहिए।

अपनी बात समाप्त करने से पहले, मैं उत्पादन मंत्री, श्री के० सी० रेड्डी द्वारा विशाखापत्तनम स्थित शिपयार्ड के बारे में खान संबंधी एक प्रश्न के उत्तर का उल्लेख करना चाहूंगा। उन्होंने कहा था कि सरकार को इस बात का कोई अनुमान नहीं है फ्रांस की फर्म किस प्रकार से यार्ड का निर्माण कर रही है अथवा उसे नया रूप दे रही है। लागत नहीं बताई गई है, शायद अब बता दी गई हो। यह केवल एक उदाहरण है, लेकिन मेरे माननीय साथी ऐसे अनेक उदाहरण हो सकते हैं।

अन्त में एक संसदीय समिति के गठन का सुझाव देता हूं—जो लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति के अतिरिक्त हो—जो आपके निर्देशों के अन्तर्गत सारे वर्ष कार्य करे और जो विशिष्ट रूप से इन विभिन्न श्रेणियों के उपक्रमों, कम्पनियों और संस्थानों के कार्य की जांच कर सके। इनमें से कुछ का गठन तो किसे भी कानून के अन्तर्गत नहीं

किया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है इससे मंत्रियों के हाथ मजबूत होंगे और यह संसद के अधिकार निश्चित कर इसे लागू करेगी और इससे भी अधिक करदाताओं को आश्वासन देगी कि उनके धन का ठीक प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है। अन्त में, महोदय, मैं कहना चाहूंगा कि मैंने यह भाषण न तो समाचार पत्रों में सुर्खियों में नाम छपवाने के लिए दिया है और ने ही हल्केपन से दिया है। यह एक राजनैतिक समस्या नहीं है। इसका दलगत राजनीति से कुछ भी लेना देना नहीं है। यह एक ऐसा विषय है जिस पर निष्पक्ष होकर रचनात्मक रूप से चर्चा करनी चाहिए। मैं सरकार से संसदीय समिति संबंधी अपने सुझाव को स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

7
संसद का दूसरा सदन*

चर्चाधीन प्रस्ताव की विषय सामग्री को दलगत नहीं बनाया जा सकता। मुझे खुशी है कि मैंने हाल ही के महीनों में कम से कम तीन विभिन्न अवसरों पर राज्य परिषद (काउंसिल आफ स्टेट्स) की शक्तियों और कार्यों विशेषरूप से (हाउस आफ दि पीपल) से सम्बधित विशिष्ट मामलों पर चर्चा उठाई है। मैं इस विषय पर निष्पक्ष रूप से और जहां तक संभव हो संरचनात्मक रूप से बात करना चाहता हूं।

मैंने राज्य परिषद (काउंसिल आफ स्टेट्स) की संरचना, इसकी शक्तियों और कार्यों में 12 निश्चित त्रुटियां गिनाई हैं। काउंसिल आफ स्टेट्स में चक्रानुक्रम सदस्यता की व्यवस्था है जिसका अमरीका पूर्वोदाहरण है। लेकिन मैं यह दिखाना चाहूंगा कि कांउसिल आफ स्टेट्स के गठन और इसकी शक्तियों और कार्यों में लगभग वही सभी त्रुटियां हैं जो विश्व के अधिकतर विधानमंडलों के अपर हाऊसों में हैं और जहां तक विश्व के कुछ देशों के अपर हाउसों के संचालन में जो अच्छी बाते हैं वे कम हैं। मैंने अभी चक्रानुक्रम प्रतिनिधित्व का उल्लेख किया था। हम कांउसिल आफ स्टेट्स को वही कार्य सौंपकर जो अमरीका की सेनेट फोरन रिलेशन्स कमेटी के हैं, इसे संविधान का एक प्रभावी अंग क्यों नहीं बना देते? हमने ऐसा नहीं किया है। कांउसिल आफ स्टेट्स एक पैवन्दी कार्य है और पैवन्दी कार्य परिणाम नहीं दिखा सकते। उदाहरण के तौर पर, सेनेट फोरन रिलेशन्स समिति राजनयिक नियुक्तियों की जांच करती है। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रत्येक राजदूत की स्वीकृति सेनेट से प्राप्त करनी होती है। मैं चाहूंगा कि काउंसिल आफ स्टेट्स को यह शक्ति मिले। यह शक्ति इसके पास नहीं है।

दूसरी बात जो मैं यहां उठाना चाहता हूं वह चक्रानुक्रम व्यवस्था की है। मेरे विचार से यह बिल्कुल गलत है। प्रत्येक दो वर्ष बाद कांउसिल आफ स्टेट्स में चक्रानुक्रम होगा जबकि यह सभा पांच वर्ष कार्य करती है। कनाडा में, स्थिति यह है जो एक बार सेनेटर बन जाये तो हमेशा सेनेटर रहता है। वह अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक सेनेटर ही

*लोक सभा में 2 अप्रैल, 1964 को केन्द्र में दूसरे सभा कक्ष (चैम्बर) संबंधी गैर सरकारी सदस्यों के संकल्प पर हुए वाद विवाद से। कालम 3998—4003, 4013, 4018।

रहता है। वह लगातार सेनेटर रहता है और राजनीतिक पहचान से मुक्त होता है। यह स्थिति हमारे यहां नहीं है। हमारे यहां भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थ जैसी स्थिति है। काउंसिल आफ स्टेट्स के हाल के चुनावों के विश्लेषण से पता चलता है कि सत्ता पक्ष की स्थिति मजबूत हुई है। कल को दूसरे दल की स्थिति मजबूत हो सकती है। सत्ता पक्ष हमेशा अच्छी स्थिति के लिए युक्ति करता है। मैं कहूंगा कि राजनीति भ्रष्टाचार की एक अकेली कहानी बन गई है। जो व्यक्ति चुनाव में हार जाते हैं - सभी पार्टियों के - उन्हें पिछले दरवाजे से लाया जाता है। मेरे विचार से यह अत्यन्त निन्दनीय है।

मेरा तीसरा मुद्दा यह है कि ब्रिटिश हाऊस आफ लार्ड्स में भी किसी दल द्वारा बोर्ड ह्विप जारी नहीं किया जाता है। और यहां क्या स्थिति है? मेरे कम्युनिस्ट दल के साथियों को भी दूसरे सदन में इसी प्रकार के ह्विप जारी किये जाते हैं। एक दिन हमने एक अनोखा तमाशा देखा, जब विशेष विवाह विधेयक (स्पेशल मैरीजिज बिल) संबंधी संयुक्त चयन समिति के बारे में सदन विभाजित हुआ था तो मार्क्सवादी दल के मेरे मित्रों ने सरकार के पक्ष में मतदान किया क्योंकि दोनों सदनों में उनके दल का सरकार के साथ गठजोड़ है - और उनका समग्र रूप से दल नेतृत्व दूसरे सदन के नेतृत्व से है न कि इस सदन के नेतृत्व से मैं सभी सम्बन्धित दलों का आदर करते हुए कह रहा हूं लेकिन तथ्य यह है कि दलीय ह्विप जारी किये जाते हैं, राजनीतिक पहचानों का प्रदर्शन किया जाता है और अपर हाऊस में दलों द्वारा सदस्यों को नियंत्रित किया जाता है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो हाऊस आफ लार्ड्स में नहीं है। मेरे विचार से यह एक आपत्तिजनक बात है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

जहां तक मंत्रियों का प्रश्न है विश्व में, कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहां अपर हाऊस का मंत्री लोअर हाऊस में भाषण देता हो और उसको सुना जाता हो। यह हमारा दुर्भाग्य है। दूसरे सदन के बहुत ही विख्यात व्यक्ति सत्ता पक्ष में बैठे हैं। हमें सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए कि उनकी बात सभा में क्यों सुनी जानी चाहिए। जैसा कि मेरे मित्र डा० राम सुभग सिंह ने दूसरे तरीके से इसे प्रस्तुत किया है कि ऐसा कर मतदाताओं द्वारा चुने न गये तथा बिना चुनाव जीते लोगों को सरकार में अवसर प्रदान किया जाता है। मुझे खेद है कि यह एक बहुत ही गलत परम्परा है और इसे तुरन्त बन्द किया जाना चाहिए। यह बड़ा ही हास्यास्पद होगा कि देश के प्रधानमंत्री से, जो इस सदन का नेता है, यह आशा की जाये कि वह शीघ्रता से यहां वक्तव्य देने के बाद उसी वक्तव्य को "काउंसिल आफ स्टेट्स" में पढ़ने हेतु भागे। काउंसिल के नेता को क्या हो जाता है? उसके कृत्य क्या हैं? ये भाषण दूसरे सदन में तोते की तरह क्यों दोहराये जाते

हैं? यह केवल एक ही काम की पुनरावृत्ति है और कांउसिल की गरिमा के प्रति अनावश्यक औपचारिकता प्रदर्शन और सरकारी धन के दुरूपयोग के सिवाय कुछ भी नहीं है।

मैं काउंसिल आफ स्टेट्स के तथाकथित संशोधनात्मक कृत्यों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मैंने इस संबंध में विश्लेषण किया है। उच्च सदन काउंसिल आफ स्टेट्स ने अपने अस्तित्वकाल में दो बार इस माननीय सदन द्वारा पारित विधेयकों में संशोधन किये। एक मामले में उच्च सदन ने एक विधेयक में "इसलिये" शब्द जोड़ा। एक अन्य मामले में कांउसिल आफ स्टेट्स के पटल पर कतिपय पत्रों के रखे जाने का प्रावधान किया गया। दूसरे शब्दों में, इसमें "स्वयं सेवा" खण्ड जोड़ा गया। संसद के छह सत्रों के दौरान उपर्युक्त केवल दो ही संशोधन किये गये। उच्च सदन का संशोधनात्मक कृत्य दिखाने के सिवाय और कुछ नहीं है। इसके विपरीत उच्च सदन को और अधिक शक्तियां देने की मांग की गई। उच्च सदन को इस सत्र में इस सदन से पहले सामान्य बजट पर चर्चा करने का अवसर मिला। उच्च सदन में चर्चा हुई। किसलिये? मैं जानना चाहता हूं कि उच्च सदन में पहले चर्चा कराने की व्यवस्था किस उद्देश्य से की गई थी?

यह दल के हित का मामला है। वस्तुतः इस सदन में दिये गये भाषणों को दूसरे सदन में दोहराने से ऊब होने लगती है। मैं इसका एक उदाहरण दे सकता हूं और मैं चाहता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री सत्य नारायण सिंह मेरी बात धैर्य से सुनें। हमारे मित्र श्री नागेश्वर सिंह ने इस सदन में वर्ग-पहेली पर प्रतिबंध लगाने संबंधी एक गैर सरकारी सदस्य विधेयक रखा था और कुछ दिन पश्चात् दूसरे सदन में एक सदस्य ने मुद्रण की त्रुटियों सहित इस विधेयक की अक्षरशः नकल कर ली और इसे कांउसिल आफ स्टेट्स में पुरःस्थापित कर दिया तथा हमें इस विधेयक की प्रतियां प्राप्त हुई। विश्व में संसद के उच्च सदन और निम्न सदनों के इतिहास में मुझे ऐसी घटना का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिला है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार की धृष्टता से दृष्टांत मिलते रहते हैं। कुल मिलाकर इस सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों का जान बूझकर अतिक्रमण किया जा रहा है। लोक लेखा समिति का विवाद अभी भी हमारे लिए ताजा ही है और संयुक्त प्रवर समिति का विवाद हमारे समक्ष है। परन्तु राजनैतिक कारणों से दूसरे सदन ने इन अतिरिक्त कृत्यों को हथिया नहीं लिया है। इन कृत्यों को दूसरे सदन को सौंपने के लिये मैं सत्तारूढ़ दल को जिम्मेदार मानता हूं।

विश्व के अन्य किसी उच्च सदन में प्रश्न काल की व्यवस्था नहीं है जैसा कि हमारे यहां है। यह दोहरा कार्य और पुनरावृत्ति है। ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स में केवल छह प्रश्नों

की ही अनुमति दी जाती है और वह भी सप्ताह में केवल दो दिन और केवल विशेष मामलों पर ही। यहां काउंसिल में प्रश्न काल में करदाताओं के पैसे को प्रतिदिन व्यर्थ गंवा दिया जाता है। पता नहीं ऐसा किस लिये किया जाता है?

मुझे यहां कुछ पूर्वोदाहरण मिले हैं। तुर्की, इजरायल और अन्य देशों के नए संविधान में उच्च सदन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई है। इन देशों में उच्च सदन नहीं है। नार्वे के बारे में क्या स्थिति है? वहां पर निचले सदन को विशुद्ध क्षेत्रीय आधार पर चुना जाता है — चुने गए सदस्यों में से एक चौथाई को दूसरे सदन के लिये पुनः निर्वाचित किया जाता है जो कि संशोधनात्मक निकाय के रूप में कार्य करता है। इसके विशेष कर्तव्य और कृत्य निर्धारित किये गए हैं। मैं तो यही सुझाव दूंगा कि कांउसिल आफ स्टेट्स, जिस रूप में वह इस समय गठित है, हाइड्रोजन बम, युक्तियुक्तकरण अथवा इस तरह के अन्य विशेष मसलों पर विचार करे और सार्थक योगदान दे न कि जो कुछ यहां हो रहा है उसे अपने सदन में दोहराये।

अंत में, "वरिष्ठ राजनेता" के सिद्धान्त अथवा "वरिष्ठ राजनेता" के मत का वर्तमान रूप में गठित उच्च सदन पर लागू नहीं होता है। मैं आपको नाम बता सकता हूं — परन्तु यह कनिष्ठ लोगों की उन किशोरों के प्रति असभ्यता होगी जिन्होंने हाल ही में कालेज छोड़े हैं और जो उच्च सदन में हैं। यह कुछ असाधारण सी बात है जब तक उच्च सदन कार्यात्मक आधार पर पुनर्गठित नहीं होता, जब तक उच्च तथा निचले सदन में शक्तियों को समतुल्य बनाने की अनपेक्षित झेड़ समाप्त नहीं होगी, जब तक उच्च सदन निर्धारित सीमाओं में — बिना प्रश्न काल, बिना वाद-विवाद और मंत्रियों की हड़बड़ी की स्थिति के बिना कार्य नहीं करता इसे समाप्त करना ही एकमात्र विकल्प है।

8

संविधान संशोधन विधेयक

इस विधेयक के पीछे गांधीवादी तथा गांधीवादोत्तर विचारधारा के चार लम्बे दशक हैं और मैं गृह मंत्री को इस विधेयक को पुरःस्थापित करने का सौभाग्य प्राप्त होने के लिए बधाई देते हुए बहुत प्रसन्न हूं। मेरे विचार से यह हमें हमारे अनेक वर्षों से निर्धारित लम्बे मार्ग पर चलते हुए उसके लक्ष्य तक पहुंचायेगा। आधुनिक भारत के इतिहास में यह सरदार वल्लभभाई पटेल की ही राजनीतिज्ञता थी जिसने कुल मिलाकर भारतीय रियासतों को समाप्त किया और अब श्री गोविनद वल्लभ पन्त, सरदार पटेल द्वारा बड़े कौशल से किये गए कार्य को आगे बढ़ाते हुए इसे पूरा कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि जब आधुनिक काल के इतिहास, जहां इस देश का संबंध है, को लिखना होगा, इस मुद्दे को नजरअंदाज नहीं किया जायेगा।

एक ऐसे व्यक्ति के रूप में, जिसे राज्य पुनर्गठन, संविधान संशोधन विधेयक और बंगाल-बिहार विधेयक से संबंधित तीन संयुक्त समितियों में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, मैं गृह मंत्री की उनके द्वारा दर्शाये गए उस अत्यधिक धैर्य के प्रति प्रशंसा व्यक्त करूंगा जो उन्होंने हमसे बहस करते समय बनाये रखा जबकि हम में से कुछ जिनमें मैं भी शामिल हूं—अपने अतिप्रिय विचारों को व्यक्त करते समय दृढ़ रहे—मैं इस शब्द का उसके सामान्य अर्थ के रूप में प्रयोग कर रहा हूं। मैं समझता हूं कि संयुक्त समितियों की इस लम्बी तथा श्रमसाध्य बैठकों में जो कुछ भी हुआ उसके अलावा गृह मंत्री ने दोहराये जाने वाले निजी वार्तालाप के लिए हममें से कुछ को आमंत्रित भी किया और मैं नि सब बातों को रिकार्ड में इसलिए शामिल कर रहा हूं कि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और थोड़े समय वे वास्तव में बहुत बीमार भी थे और सिर्फ कर्तव्य की पुकार ही उनसे वह सब करवा सकी जो उन्होंने किया।

यह गृहमंत्री की विशेषता ही है कि वे सदैव विवेकशील रहते हैं। विवेकशीलता ही उनका मार्गदर्शक था और हममें से कुछ की जब उनसे झड़प हो जाती थी, जैसाकि अक्सर हुआ करता था, बहस में भाग लेने वालों के समक्ष सचाई प्रस्तुत करने की उनकी वास्तविक चिन्ता से इतने अधिक प्रभावित हो जाते थे कि उनके समक्ष अपनी बात रख कर उसे मनवाने में असमर्थ से हो जाते थे।

इसके अतिरिक्त मैं यह कहना चाहूंगा कि अब जबकि राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया अपने अन्तिम चरण में पहुंच गई है, यह सम्मानीय सभा इस विधेयक को पारित करेगी, इस विषय में मुझे कुछ शंकायें हैं। अखिल भारतीय भाषाई राज्य सम्मेलन का लगातार चार वर्षों तक प्रेजीडेंट रहने का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण मेरा राज्यों के भाषाई पुनर्गठन की समस्या के कुछ वर्षों से नियमित निकट का संबंध रहा है और इस संबंध में मुझे अब भी कुछ संदेह है। मैं सिर्फ शंकालु थामस बन कर नहीं रह जाना चाहता अपितु इस माननीय सभा द्वारा इस विधेयक को पारित करने के पहले मैं संक्षेप में पांच प्रस्तावों को रखते हुए गृह मंत्री को प्रभावित करने की आशा करता हूं।

संयुक्त समितियों में राज्य पुनर्गठन विधेयक और संविधान संशोधन विधेयक दोनों पर हममें से अधिकांश ने दलगत संबंधों से ऊपर उठकर सीमा आयोग के प्रश्न को उठाया था। जिस समय राज्य पुनर्गठन विधेयक पर चर्चा की जा रही थी तो आशा की जा रही थी कि जब इस समस्या से उपयुक्त ढंग से निपटने के लिए इस विधेयक को प्रस्तुत किया जा रहा है तो कुछ न कुछ किया जाना चाहिए। मैं पहले प्रस्तुत तर्कों को दोहराना नहीं चाहूंगा, मैं सिर्फ दो वक्तव्य दूंगा। यदि गृह मंत्री राज्य पुनर्गठन विधेयक के विषय में संशोधनों की सूची मंगाते हैं और दुबारा उन पर दृष्टिपात करते हैं—सभा की कार्य सूची से उन्हें पता चलेगा कि अनेक सदस्यों से, जिनमें कांग्रेस के भी सदस्य शामिल हैं, बहुत बड़ी संख्या में संशोधन प्राप्त हुए हैं जिनमें सीमा आयोग के बारे में मांग अथवा सुझाव दिये गये हैं।

जब यह सभा संविधान संशोधन विधेयक पर विचार कर रही है, मैं यह ध्यान दिलाना चाहूंगा कि आंध्र और मद्रास सरकारों के बीच एक बहुत नाजुक तथा गम्भीर स्थिति पैदा हो गयी है। पिछले माह की 14 तारीख को मद्रास विधान सभा में एक बहुत ही अभूतपूर्व घटना घटी जब मद्रास विधान सभा के नेता ने आन्ध्र सरकार को सीमा विवाद, जो कि मद्रास और आंध्र राज्यों के बीच तब भी था और आज भी विद्यमान है, के बारे में कुछ कहने के लिए आंध्र के राज्यपाल को फटकारा। मैं किसी तरह का उल्लंघन किए बिना रिकार्ड में दो संक्षिप्त उद्धरण शामिल करना चाहूंगा—एक श्री सुब्रह्मण्यम का, जो मद्रास विधान सभा के नेता थे और दूसरा श्री गोपाला रेड्डी का, जो आंध्र प्रदेश के मुख्य मंत्री थे, ने श्री सुब्रह्मण्यम के वक्तव्य के उत्तर में कहा था।

14 अगस्त को, वास्तव में वाद-विवाद 13 को हुआ था, मैं 14 अगस्त के "हिन्दू" को उद्धृत कर रहा हूं, श्री सुब्रहमण्यम ने कहाः—

> "मैं किसी पर दोष नहीं लगा रहा किन्तु अभी भी हमने राज्यपाल, द्वारा संबोधित किये जाने वाले भाषण की विषयवस्तु के बारे में परम्परायें स्थापित नहीं की हैं, यह एक बहुत बड़ा सबक होगा। विशेषतया यदि यह मामला अन्तर्राज्यीय विवाद का है और यदि इस पर अब भी बातचीत चल रही है तो इस मामले को राज्यपाल के संबोधन में सरकार की एक नीति के रूप में रखने से कठिनाईयां पैदा होंगी।"

श्री सुब्रहमण्यम ने कहा कि कुरनूल में राज्यपाल द्वारा विधान सभा को सम्बोधित अपने भाषण में आंध्र प्रदेश सीमा विवाद सम्बन्धी विशेष समस्या का जो उल्लेख किया गया है, वह अन्तर्राज्यीय मर्यादा की समस्त सीमाओं का उल्लंघन है। श्री सुब्रहमण्यम ने यह भी कहा किः

> "अब यह विवाद पिछले तीन सालों से लंबित पड़ा है।"

उसका श्री गोपालन रेड्डी ने 17 अगस्त को आंध्र प्रदेश विधान सभा में उत्तर दियाः

> "यह केवल इसी कारण से था कि हमने भारत सरकार को यह जानकारी दी थी कि उनके लिए यह वांछनीय होगा कि वह इस प्रकार के सीमा विवादों को निपटाने के लिए समान सिद्धान्त तैयार करें।"

मुझे विश्वास है गृह मंत्री मेरी इस बात से सहमत होंगे कि आंध्र प्रदेश सरकार ने आंध्र प्रदेश विधान सभा में अपनी कही गई बात के अनुसार भारत सरकार को लिखा है।

मैं इसे कार्यवाही वृतांत में इस कारण से शामिल कर रहा हूं। जैसा कि मैंने सभा में तथा संयुक्त समिति की बैठक में भी बार-बार दोहराया है कि इन सीमा विवादों का समाधान आपसी बातचीत द्वारा नहीं हो सकता। आंध्र प्रदेश सरकार तथा मद्रास सरकार ने उच्च स्तरों सहित कई विभिन्न स्तरों पर लगातार तीन वर्षों तक इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है तथा दोनों सरकारों ने किसी समझौते पर पहुंचने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है। दोनों ही सरकारों ने एकमत से एक आयोग को गठित करने की मांग की

है। यहां एक वाक्य में, मैं यह कहूंगा कि मैसूर सरकार ने भी हाल ही में एक आयोग गठित करने का अनुरोध किया है।

गृह मंत्री को यह बताना चाहिए कि राज्य पुनर्गठन विधेयक में पहले ही प्रांतीय परिषदों की व्यवस्था की गई है। किन्तु यहां एक ही राजनीतिक दल से संबंधित दो राज्य, सरकारों का मामला है। तथा यह राजनीतिक दल उन लोगों द्वारा चलाया जा रहा है जो कांग्रेस द्वारा चलाए गए आंदोलनों तथा देशभक्ति आंदोलनों में एक दूसरे के सहयोगी अथवा साथी रहे हैं, वे भी किसी समझौते पर नहीं पहुंच सके हैं। मैं उनसे पूछता हूं कि क्या वे संविधान के अनुच्छेद 3 अथवा अनुच्छेद 4 का सहारा लेगें तथा एक सीमा आयोग नियुक्त करेंगे। यदि वे ऐसा नहीं करते तो इस समस्या का समाधान कैसे किया जाएगा? क्या वे दोनों सरकारों से कहेंगे—तथा क्या इस प्रकार मैं भारत में प्रत्येक स्थान पर अथवा भारत में विभिन्न राज्य सरकारों के बीच लंबित पड़े सीमा विवाद का समाधान कर सकता हूं?

मेरे विचार से इस सभा ने जहां तक इस समस्या का संबंध है कम से कम मुझे इस बात की अनुमति दी है कि मैं कार्यवाही-वृतांत में से कुछ उद्धृत कर सकूं कि संवैधानिक रूप से नियुक्त किए जाने वाले सीमा संबंधी आयोग के बिना, पूरे विश्व के सद्भाव के साथ भी इन समस्याओं का प्रेमपूर्वक समाधान हो सकता है। मैं इस संबंध में अपने मित्र गृह मंत्री की भावनाओं को समझता हूं किन्तु मुझे सीमा संबंधी आयोग की स्थापना से संबंधित इस विशेष मुद्दे के संबंध में खेद है। दोनों विधेयकों राज्य पुनर्गठन विधेयक तथा इस विधेयक में एक बड़ी त्रुटि है, जिसे दूर किया जाना है।

मुझे विश्वास है कि हममें से कोई भी स्थिति को अत्यंत कटु नहीं बनाएगा तथा देश के विभिन्न भागों में जहां कहीं भी सीमा संबंधी विवाद हैं, अप्रत्यक्ष रूप से गृह युद्ध की स्थिति को उत्पन्न न होने देने के लिए अपनी भावनाओं को उत्तेजित नहीं करेगा। गृह मंत्री मेरी इस बात से सहमत होंगे किन्तु इस समस्या के प्रति आंखें मूंद लेने से समस्या का समाधान नहीं होगा, तथा मैं आशा करता हूं कि चूंकि भविष्य में इस प्रश्न को उठाने का कोई अवसर नहीं आएगा, वे इस प्रश्न पर विचार करेंगे तथा अंतिम क्षण में इस विधेयक में संशोधन करेंगे अथवा संविधान के अनुच्छेद 3 और 4 का सहारा लेकर एक आयोग की नियुक्ति करेंगे, जिसका कि इस समस्या के समाधान के लिए देश को अधिकार है। यह बात मैं इसलिए नहीं कह रहा हूं कि मैं आंध्र का रहने वाला हूं क्योंकि यह सभा जानती है कि अखिल भारतीय भाषाई राज्य सम्मेलन का प्रेजीडेंट होने के कारण मेरा स्थानीय अथवा संकीर्ण प्रकार की भावना से कोई संबंध नहीं है।

भाषाई अल्पसंख्यकों के प्रश्न के बारे में मैंने गृह मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखे गए नोट को देखा है। मामूली सी जांच के बाद इस नतीजे से मुझे थोड़ी सी निराशा हुई है। मुझे इससे कहीं अधिक आशा थी—भाषाई अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए भारत सरकार की प्रस्तावित कार्रवाई को लागू करने के संबंध में मैंने शब्दों का प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक किया था।

यह एक दुःखद तथ्य है कि देश के विभिन्न भागों में भारतीय नागरिकों को एक ही वर्ग की नागरिकता प्रापत नहीं है। दूसरी अथवा अधीनस्थ राज्य की नागरिकता प्राप्त है तथा ऐसा संबंधित राज्य सरकार की ओर से सीधे प्रशासनिक कार्यवाही करने के कारण है। इस देश में एक भी ऐसा राज्य नहीं है जिसने अल्पसंख्यकों के जीवन को असुरक्षित न बनाया हो। मैं तमिल अल्प संख्यकों के संबंध में आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा की गई कार्रवाई की बात कर रहा हूं। मैं उड़ीसा के संबंध में भी यह बात कह सकता हूं, आंध्र प्रदेश के अल्पसंख्यकों के साथ उड़ीसा सरकार के व्यवहार को देखते हुए मैं ऐसा कह रहा हूं, लगभग पौने-दो लाख लोगों के संबंध में भी यह स्थिति हो सकती है। इसी प्रकार मैं देश के प्रत्येक भाग से ऐसे अनगिनत उदाहरण दे सकता हूं जहां भाषाई अल्पसंख्यक रहते हैं तथा उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाता है तथा जहां उपचार की आवश्यकता है। इसके परिणामस्वरूप राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशें, जिन्हें गृह-मंत्री द्वारा सभापटल पर रखे गए नोट द्वारा स्वीकृत होकर क्रियान्वित किया जाना था, से समस्या का एक सीमा तक समाधान हो जाएगा।

मुझे प्रसन्नता है कि गृह मंत्री ने अल्प संख्यक आयुक्त सम्बधीय मेरे सुझाव को स्वीकार कर लिया है। किन्तु केन्द्र द्वारा कोई निर्देश दिए बिना, जो कि अल्पसंख्यकों के लिए इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं कि वे अपने अधिकारों को सुरिक्षत माने, मुझे संदेह है कि यह प्रस्तावित कार्रवाई उसके अनुरूप नहीं है जिसकी गृह मंत्री से अपेक्षा थी और जिसकी देश आशा करता था।

नोट के पैरा 22 में जिसमें गृह-मंत्री ने राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट में से एक पैरा उद्धृत किया है, यह उल्लेख किया गया है, मैं नीचे आयोग के स्वयं के शब्द उद्धृत कर रहा हूं:

> "..... हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि कोई भी आश्वासन राज्य सरकार की हर प्रकार की भेदभाव पूर्ण नीति से अल्पसंख्यकों की रक्षा नहीं कर सकता।"

मैं इसे राज्य पुनर्गठन आयोग को बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण वक्तव्य मानता हूं। मेरे विचार

से गृह मंत्री को राज्य पुनर्गठन आयोग के इस नोट में जो कि सदस्यों को परिचालित किया गया है, यह विशेष अंश उद्धृत नहीं करना चाहिए था क्योंकि इस प्रकार वे राज्य सरकारों को बोलने का स्पष्ट अवसर दे रहे हैं। यह मनोवैज्ञानिक रूप से बहुत गलत है। मुझे विश्वास है कि चूंकि इस नोट की कोई संवैधानिक वैधता नहीं है क्योंकि न तो यह विधेयक का हिस्सा है और न ही यह संयुक्त समिति की रिपोर्ट का हिस्सा है, यह केवल सरकार के आशयों सम्बन्धी एक वक्तव्य है। मुझे आशा है कि इस क्षति को पूरा किया जायेगा। मैं किसी नुक्ताचीनी के अभिप्राय से यह बात नहीं कह रहा हूं, मैं केवल इस ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जब तक देश के विभिन्न भागों में रहने वाले इन चार करोड़ भाषाई अल्पसंख्यकों को यह आश्वासन नहीं दिया जाता कि उन्हें इस देश में श्रेणी-एक के नागरिकों के समान, न कि श्रेणी-दो के नागरिकों के समान जीने का अधिकार है, मुझे विश्वास है कि राज्य पुनर्गठन की इस समस्या का, जिसका हम इस संविधान (नौवें संविधान) विधेयक द्वारा समाधान करने जा रहे हैं, समाधान नहीं होगा। भाषीय अल्पसंख्यकों के साथ प्रशासनिक भेदभाव किया जाता है। स्थानीय न्यायालयों और विद्यालयों में मातृ-भाषा के प्रयोग की अनुमति नहीं है। स्कूलों में भी मातृ-भाषा में अभिव्यक्ति की अनुमति नहीं होती। रोजगार के मामले में भी अनेक प्रशासनिक प्रतिबंध लगे हैं। निवास संबनधी नियम विद्यमान हैं। मुझे खुशी है कि गृह मंत्री ने संयुक्त समिति में हमें यह बताया कि भारत सरकार जब भी संभव होगा अधिवास संबंधी अधिकारों के संदर्भ में दर्शाई गई स्थिति को स्पष्ट करने के लिए विधान बनाएगी। मैं जानता हूं कि देश के विभिन्न भागों में उन व्यक्तियों को वोट का अधिकार नहीं है जो 12 वर्ष तक लगातार एक स्थान पर न रहे हों। ये सभी प्रशासनिक कठिनाइयां हैं। मैं इस मुद्दे को बिना किसी बात के बढ़ाना नहीं चाहता। में केवल यह कहना चाहता हूं कि ऐसे प्रशासनिक प्रतिबंध हैं जिन्होंने देश के सभी भागों में भाषायी अल्पसंख्यकों को दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया है। मैं इसका विरोध करता हूं।

मेरा कहना है कि जब तक भाषीय अल्पसंख्यक आयुक्त का पद नहीं बनाया जाता है जिसे आंकड़े एकत्र करने और दस्तावेज प्राप्त करने, देश का दौरा करने और राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हो और जिसे इस प्रयोजनार्थ आवश्यक साधन उपलब्ध हो, और जब तक उस रिपोर्ट को वाद-विवाद हेतु सभा पटल पर नहीं रखा जाता और जब तक अल्पसंख्यक आयुक्त की रिपोर्ट के बारे में सभा के निष्कर्षों के संदर्भ में भारत सरकार द्वारा आवश्यक निदेश जारी नहीं किए जाते तब तक इस देश में संतोष नहीं हो पायेगा।

संशोधन संख्या 183 से यह पता लगता है कि अब संविधान के अनुच्छेद 350ख में कुछ संशोधन किया जा रहा है। लेकिन मैं इससे संतुष्ट नहीं हूं।

मेरा तीसरा मुद्दा संघ शासित राज्यों के बारे में है। गृह मंत्री ने विश्वासपूर्वक यह कहा कि वह संघ शासित प्रदेशों के लोगों के विचारों और जनमत के अनुसार कार्य करेंगे। हममें से कुछ को उन प्रशासनिक और विधायी तरीकों के अंतिम रूप के बारे में काफी कठिनाई महसूस होती है जो संघ शासित राज्यों-निगम, गैर-सरकारी क्षेत्र से लिए गए किन्तु सरकार द्वारा नियुक्त किये गये सलाहकारों को उपलब्ध कराये जाएंगे। उनके अधिकार क्या होंगे? उनकी शक्तियां एवं कृत्य क्या होंगे? क्या उन्हें कुछ विभाग सौंपे जाएंगे? क्या उन्हें करारोपण और व्यय करने की शक्तियां प्राप्त होंगी? इसमें ये सभी समस्याएं हैं।

इसके अतिरिक्त, ये सभी संघ शासित राज्य एक ही श्रेणी के नहीं हैं। दिल्ली एक विशाल नगर है। हिमाचल प्रदेश एक पहाड़ी क्षेत्र है जो विभिन्न जिलों में फैला हुआ है। त्रिपुरा और मणिपुर सामरिक दृष्टि से विशेष महत्व के हैं। अंडमान और निकोबार, मिनीकॉय और अमीनदीव द्वीप-समूह अपनी ही प्रकार के हैं। इसलिए सभी के लिए एक ही प्रकार की व्यवस्था नहीं हो सकती। गृह मंत्री ने हम में से कुछ के साथ शिष्टमंडल के रूप में मिलने पर कुछ के साथ निजी तौर पर या संयुक्त समिति में बातचीत की है। लेकिन हमें यह बात स्पष्ट नहीं है कि प्रशासन चलाने के लिए लोक मत का किस प्रकार उपयोग में लाया जाएगा। बिना किसी आशंका के मुझे विश्वास है कि गृह मंत्री एक लोकतांत्रिक व्यक्ति हैं। लेकिन उनके लोकतांत्रिक होने मात्र से तो यह सुनिश्चित नहीं हो जाता है कि संघ शासित राज्यों में लोकतांत्रिक संस्थाएं स्थापित हो जायेंगी। मैं जानता हूं कि इस तथ्य की सच्चाई से उनके हाथ बंधे हैं कि उन्हें संघ शासित प्रदेश घोषित कर दिया गया है। मैं जानता हूं कि विश्व के अन्य देशों में भी वैसे ही केन्द्र-शासित प्रदेश हैं जैसे कि हमारे यहां हैं जिन्हें संघ-शासित प्रदेश कहा जाता है। यदि मेरी जानकारी गलत नहीं है, तो संयुक्त राज्य अमरीका में वाशिंगटन शहर का अपना प्रशासन भिन्न प्रकार है।

लेकिन मेरे विचार से यह उचित समय है जबकि गृह मंत्री को इस सभा के समक्ष पूरा चित्र प्रस्तुत करना चाहिए। अन्यथा इस प्रश्न का समाधान करने के लिए केवल एक ही रास्ता है कि हम उन पर पूर्ण विश्वास करते हुए जो हम करते हैं, उन्हें उपस्थिति परिस्थितियों में जो भी संभव हो करने का पूर्ण अधिकार दे दें। उस स्थिति में, मुझे एक व्यवधान नजर आ रहा है, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सी०के० नायर ने बीच में

टोककर कहा है। यह मानते हुए कि निर्धारित दिन अर्थात् नवम्बर में नए राज्य अस्तित्व में आ रहे हैं, गृह मंत्री के लिए संघ शासित प्रदेशों को उस प्रकार की सरकार प्रदान करने का समय नहीं रह जाता है जैसी वह चाहते हैं। इसका अर्थ है कि अंतरिम अवधि के लिए सरकारी कर्मचारी ही दिल्ली सहित उनका कार्य-भार संभालेंगे। मेरे ख्याल से मैंने उनके विचारों को सही ढंग से समझा है। और मुझे इस पर खेद है। मेरा विचार है कि आज और निर्धारित दिन के बीच यह सुनिश्चित करने के लिए कुछ कदम उठाए जा सकते हैं कि सरकार के साथ कुछ जन प्रतिनिधि भी जोड़े जायें, क्योंकि इस लोकतांत्रिक युग में, भारतीय गणतंत्र में हम कतिपय संघ राज्य क्षेत्रों को जन-प्रतिनिधियों के सहयोग और सहायता पर आधारित विधायी और प्रशासकीय संभावनाओं से वंचित नहीं रख सकते ।

महत्व की दृष्टि से, अब मैं विधेयक के बारे में अपने विश्लेषणानुसार स्थायी क्षेत्रीय समितियों के बारे में बात करूंगा। मैंने राज्य पुनर्गठन विधेयक के संदर्भ में संयुक्त समिति में इस बात की ओर ध्यान दिलाया था कि कुछ क्षेत्रों के लिए स्थायी समितियों की मूल संकल्पना में परिवर्तन कर दिया गया है। "स्थायी" शब्द हटा दिया गया है। मैं शब्द विशेष पर जोर नहीं देना चाहता लेकिन पूरी संकल्पना में परिवर्तन कर दिया गया है, ऐसा पहले पंजाब के संदर्भ में किया गया और फिर आंध्र प्रदेश के संदर्भ में।

पंजाब के मामले में सभा महसूस करेगी कि इस योजना को संयुक्त समिति की इस विधेयक से संबंधित रिपोर्ट का हिस्सा बना दिया गया है जबकि आंध्र प्रदेश के मामले में मैंने मंत्री से अल्प सूचना प्रश्न पूछा था और उन्होंने इस सभा पटल पर रखा था। मैंने कहा था कि इसे विधेयक के साथ जोड़ दिया गया है किन्तु यह विधेयक का अंग नहीं है। मैंने कहा था कि इसे संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न कर दिया गया है। पंजाब के बारे में अपने वक्तव्य में सुधार करते हुए उन्होंने कहा कि यह संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न है। आंन्ध्र-तेलांगाना के मामले में इसे सभा पटल पर रखा गया था।

यदि मैंने गृह मंत्री की बात सही सुनी है तो उन्होंने कहा है कि वर्तमान दिल्ली राज्य के सभी ग्रामीण क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय समितियां जैसी व्यवस्था की जाएगी। मैंने उनकी बात को इस तरह समझा है। मैं आंध्र प्रदेश के लिए क्षेत्रीय समिति के बारे में थोड़ा विस्तार से चर्चा करने की सदन से अनुमति चाहूंगा क्योंकि मेरा विचार है कि आंध्र प्रदेश और तेलांगाना के कुछ कांग्रेसी नेताओं के बीच 20 फरवरी, 1956 के तथाकथित हैदराबाद हाउस समझौते के कारण बहुत बड़ा भ्रम पैदा हो गया है।

मेरी बात संक्षेप में इस प्रकार है। 20 फरवरी को आंध्र प्रदेश और तेलांगाना के आठ आंध्र नेताओं के बीच दिल्ली स्थिति हैदराबाद भवन में समझौता होना था। मुझे यह बताया गया था कि इस समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किये गये हैं और समिति में या उससे बाहर इस बात का खंडन भी नहीं किया गया है। मुझे बताया गया था कि यह हैदराबाद राज्य के मुख्य मंत्री ने स्वयं लिखा था परन्तु ये छोटे मुद्दे हैं। यह पहले फरवरी में और फिर एक महीने पहले उस समय इसका बड़ा प्रचार किया गया जबकि संयुक्त समिति में इस पर चर्चा की गई। तथाकथित समझौते का पैरा 12 इस प्रकार है :—

"मंत्रिमंडल में क्रमशः आंध्र प्रदेश और तेलांगाना से 60 और 40 के अनुपात में सदस्य होंगे। तेलांगाना के 40 प्रतिशत मंत्रियों में तेलांगाना से एक मुस्लिम मंत्री होगा।

इसका अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग पैरा 13 है जोकि इस प्रकार है :—

> "यदि मुख्य मंत्री आंध्र प्रदेश से हैं तो उप मुख्य मंत्री तेलांगाना से होगा और यदि मुख्य मंत्री तेलांगाना से होगा तो उप मुख्य मंत्री आंध्र प्रदेश से होगा। गृह, वित्त, राजस्व, योजना तथा विकास और वाणिज्य तथा उद्योग विभागों में से दो विभाग तेलांगाना के मंत्रियों को दिये जायेंगे।"

न चाहते हुए भी मुझे इस दस्तावेज की ओर इस सदन का ध्यान आकर्षित करना होगा। गृह मंत्री जी ने संयुक्त समिति में हमें आश्वासन दिया था—मैं समझता हूं कि यह कह कर कि सरकार ने इस दस्तावेज विशेष को स्वीकार नहीं किया है, मैं कोई गोपनीयता प्रकट नहीं कर रहा हूं। गृह मंत्री जी ने इसे देखा है कि जो नोट सभापटल पर रखा गया था उसमें उस कथित समझौते को शामिल नहीं किया गया है जो फरवरी में मंत्रियों के दो दलों के मध्य होने वाला था। परन्तु मेरी मुख्य शिकायत यह है कि तथाकथित विशेष समझौते का उस वक्तव्य में उल्लेख किया गया है जिसे माननीय मंत्री ने सभापटल पर रखा है जिसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण आंध्र प्रदेश और सम्पूर्ण तेलांगाना को यह विश्वास हो गया कि विभागों और पदों का इस प्रकार से आवंटन पहले ही किया जा रहा है।

सभा को और अध्यक्ष महोदय आपको भी याद होगा कि केवल पांच दिन पहले ही आंध्र प्रदेश के मंत्रियों में से कुछ ने कुछ अन्य मंत्रियों को हटाये जाने के लिए एक हस्ताक्षर अभियान नये आंध्र प्रदेश का गठन होने से पहले ही चलाया था ताकि इस प्रकार के विभाग विभाजन की योजना में उनकी मनचाही हो सके। मैं गृह मंत्री जी से एक आश्वासन चाहता हूं क्योंकि वह लोकतंत्रवादी हैं और मुझे उनके लोकतंत्रवादी दृष्टिकोण पर

पूर्ण विश्वास है। परन्तु भावी आंध्र प्रदेश का इस प्रकार से गठन करने का यह ढंग उचित नहीं है। इस तथाकथित दस्तावेज के आधार पर क्षेत्रवाद के उभरने का स्पष्ट खतरा है। इस दस्तावेज का न तो आंध्र प्रदेश के मंत्रियों ने और न ही तेलंगाना के मंत्रियों ने खंडन किया है। अब ऐसा होने जा रहा है।

जहां तक मुझे याद है कि इससे पहले भी मैंने इस बारे में संयुक्त समिति में बताया था। मैंने विधेयक के साथ लगे अपने विमत टिप्पण में भी कहा है। मेरा विश्वास है कि यह सदन एक बड़े विधानमंडल के अंदर एक छोटा विधानमंडल और एक बड़े मंत्रिमंडल के अंदर एक छोटा मंत्रिमंडल बनाने की अनुमति नहीं देगा एक विशेष प्रश्न यह है जिसकी ओर मैं गृह मंत्री जी का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। नोट के पैरा 5 से जिसे उन्होंने पटल पर रखा है मैं उदाहरण देना चाहूंगा क्योंकि मैं निश्चय ही इस बारे में अधिक चिंतित हूं। उन्होंने इसमें कहा है कि:—

> "आंध्र के लिए बनी क्षेत्रीय समिति द्वारा की गई सलाह सरकार और राज्य विधान मंडल द्वारा आमतौर पर स्वीकार कर ली जाएगी।"

मैं स्वीकार करता हूं कि उस समय इस बात पर मेरा ध्यान नहीं गया था जब माननीय मंत्री ने मुझे इस विशेष दस्तावेज पर मंत्रियों के साथ विचार-विमर्श और बातचीत करने के लिए कुछ समय पहले बुलाया था। भारत सरकार द्वारा की गई अपने आश्वय की घोषणा के प्रति राज्य विधान मंडल पहले ही कैसे वचनबद्ध हो सकता है। कोई भी विधान मंडल किसी स्थाई समिति में किये गये किन्हीं करारों और निर्णय के प्रति वचनबद्ध नहीं हो सकता।

मेरे विचार से क्षेत्रीय समिति को गठित करने का मूल उद्देश्य यह है कि जिन कतिपय कुछ क्षेत्रों को एक साथ जोड़ दिया गया है उन्हें पर्याप्त और उचित संरक्षण प्रदान किया जाये। मैं इस बात से सहमत हूं कि अनुचित संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए परन्तु जिस तरीके से गृह मंत्री जी द्वारा सभा पटल पर रखे गये दस्तावेज में तथाकथित समझौते को शामिल किया गया उस पर मुझे चिन्ता हुई।

मैं पूर्ण दायित्व की भावना से और गंभीर रूप से उनसे एक अनुरोध कर रहा हूं। यह पार्टी के निर्णय पर आधारित विवाद का विषय नहीं है। जहां तक संविधान संशोधन का संबंध यह सभी के लिए समान महत्व का विषय है। परन्तु इस विधेयक पर चर्चा करते समय हमें इस पर विचार करना चाहिए मैं आशा करता हूं कि गृह मंत्री जी मुझे गलत नहीं समझेंगे।

एक दूसरा विषय जिस पर मैं चर्चा करूंगा वह है दूसरे सदन का प्रश्न मैं एक रूढ़िवादी हूं और मुझे इस पर गर्व है। इस सदन को याद होगा कि मैंने दो या तीन वर्ष पूर्व राज्य सभा के संदर्भ में इस सदन के अधिकार और कृत्यों के बारे में प्रश्न उठाया था। परन्तु यहाँ मैंने जो देखा उस पर बहुत दुख होता है। यह एक सिद्धान्त का प्रश्न है जिस पर हमें विचार करना होगा।

जब राज्य पुनर्गठन विधेयक संबंधी संयुक्त समिति ने इस विधेयक का निपटान किया था तो उस समय उसमें मध्य प्रदेश में दूसरा सदन बनाने का उपबंध नहीं था और इस रूप में वह इस सभा में पेश किया गया था। लेकिन एक भगदड़ सी मची और लाबी में कुछ ऐसी घटनायें घटी कि एक संशोधन लाया गया और दूसरे सदन का उपबंध कर दिया गया। मैं जानता हूं और मेरे मित्र भी इस बात से इंकार नहीं करेंगे कि आंध्र प्रदेश में दूसरा सदन बनाने के लिए सरकार और स्वयं गृह मंत्री पर अत्यधिक दबाव डाला गया। लेकिन मेरे विचार से भारतीय राष्ट्रवाद, हमारे लोकतंत्र और आर्थिक स्थिति के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम नये राज्यों में दूसरे सदने की व्यवस्था नहीं करेंगे।

मैंने वही प्रश्न रखा जो संयुक्त समिति में रखा गया था। आन्ध्र मद्रास का भाग था। उस समय वहां पर दूसरा सदन था। जब आन्ध्र पृथक राज्य बना था तो आन्ध्र में दूसरे सदन की व्यवस्था नहीं की गई थी। अब आन्ध्र प्रदेश बनाने के लिए हैदराबाद का एक हिस्सा आन्ध्र में सम्मिलित किया जा रहा है और इसके लिए संभवत दूसरे सदन की व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन मुझे इसका कोई तर्क दिखाई नहीं देता। मैं नहीं जानता कि दूसरे सदन की व्यवस्था से क्या प्रयोजन हल होगा सिवाय इसके कि मैं कठोर शब्द प्रयोग नहीं करना चाहता, कि आम चुनावों में नकार दिये गये लोगों को सार्वजनिक जीवन में स्थान दिया जाये। मैं पूरे सम्मान के साथ कह रहा हूं कि मेरी जानकारी के अनुसार राज्य सभा में सभी दलों ने वर्ष 1952 के आम चुनावों में पराजित हुए लोगों को निर्वाचित कराया है। इसमें किसी विशेष दल की बात नहीं है। मैं इधर-उधर के दर्जन भर नामों का उल्लेख कर सकता हूं।

भारत के संविधान में इस प्रकार की कार्य प्रणाली की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। मुझे आशा है कि गृह मंत्री जी इस संबंध में किसी भी मांग का अन्तिम समय तक विरोध करेंगे। मुझे पता है कि इस समय कुछ वर्गों द्वारा आन्ध्र के लिए दूसरे सदन की मांग की जा रही है।

अन्ततः मैं यह कहना चाहूंगा कि मैंने जो कुछ कहा है वह दोष निकालने के आशय

से नहीं कहा है। मैंने यह पूरे उत्तरदायित्व से कहा है। इन अनेक और संकटपूर्ण महीनों में, विशेषकर बम्बई और अहमदाबाद की वीभत्सपूर्ण घटनाओं को देखते हुए, गृह मंत्री जी ने जिस भार का वहन किया है मैं उससे पूर्णतः अवगत हूं।

जहां तक बम्बई राज्य का संबंध है, कुछ सप्ताह पूर्व राज्य पुनर्गठन विधेयक में जो व्यवस्था की गई है उन्हें देखते हुए हममें से कोई भी इससे छेड़खानी नहीं करना चाहेगा। भाषायी पुनर्गठन के सिद्धान्त को दूसरे मामलों में मान लिया गया है। भावनाओं के वर्तमान उद्वेग के शांत हो जाने पर सम्भवतः समय के साथ महाराष्ट्र के लोगों का अपना राज्य होगा और गुजरातियों का अपना अलग राज्य होगा। भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के सिद्धान्त को छोड़ा नहीं जा सकता और मौजूदा बम्बई राज्य को छोड़ कर इसे स्वीकार कर लिया गया है। भाषाई आधार को मान लिया गया है और राज्य के पुनर्गठन के संबंध में इसे लागू कर दिया गया है और अब हम पुनर्गठन के अंतिम चरण पर पहुंच रहे हैं; गृह मंत्री जी ने इन सभी तीनों विधेयकों को जिस समन्वित ढंग से उपबंधित किया है, उसकी मैं पुनः प्रशंसा करता हूं।

9

कश्मीर के बारे में प्रस्ताव*

मैं माननीय प्रधान मंत्री द्वारा दिनांक 24 जुलाई को जम्मू एवं कश्मीर के बहुत ही महत्वपूर्ण और विवादास्पद प्रश्न पर दिए गए वक्तव्य का सामान्यतः स्वागत करता हूं। इस सभा में उनके द्वारा दिये गये भाषण को सुनने के पश्चात् और इसके मुद्रित पाठ का अध्ययन करने के बाद मैंने संशोधन का एक नोटिस दिया था जिसे मैं प्रस्तुत करने का प्रस्ताव नहीं कर रहा हूं। मैंने संशोधन का नोटिस इसलिए दिया, क्योंकि प्रधान मंत्री द्वारा पिछले अवसरों पर दिए गए वक्तव्य में एक ओर जम्मू एवं कश्मीर से आए प्रतिनिधि मण्डल तथा दूसरी ओर भारत सरकार के बीच हुए समझौते में केवल स्वदेशी पहलुओं को ही एक प्रकार की योजना में भलीभांति समाहित कर दिया गया और उक्त अवसर पर इस मसले के अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं पर उस सीमा तक चर्चा नहीं की गई जितनी मुझे उम्मीद थी। सदन के नेता द्वारा दिए गए वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए मैंने संशोधन का नोटिस वापस ले लिया। मैंने संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यसूची से कश्मीर समस्या संबंधी मसले को वापस लेने का नोटिस दिया था। मैंने अपना संशोधन वापस ले लिया ताकि भारत के प्रधान मंत्री अथवा भारत सरकार को कोई परेशानी न हो क्योंकि मेरा विचार है कि इस मसले पर जिस पर हमारी भावनाएं वास्तव में उत्तेजित हो जाएंगी, इस देश में कोई भी व्यक्ति हमारी विदेश नीति, हमारी देश की सीमाओं की सुरक्षा और आन्तरिक सुरक्षा को खतरे में डालने के लिए तैयार नहीं है।

मैं इस विषय-वस्तु पर पिछले अवसर पर आदरणीय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू द्वारा दिए वक्तव्य पर संक्षिप्त रूप से अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं। मैंने कहा है कि मैं सामान्यतया एक ओर कश्मीर प्रतिनिधि मण्डल और दूसरी ओर भारत सरकार के बीच हुए समझौते का स्वागत करता हूं। मैं यह जानकर प्रोत्साहित हूं और मुझे सभा के माननीय नेता पंडित नेहरू द्वारा दिए गए इस स्पष्टीकरण से प्रसन्नता है कि राज्यारोहण हमेशा यहां तक अक्तूबर, 1947 में भी पूरी तरह सम्पन्न हुआ..... मैं जानता हूं कि

*लोक सभा में 7 अगस्त, 1952 को कश्मीर के बारे में सरकारी प्रस्ताव पर हुए वाद-विवाद से। कालम् 5793—5800

कश्मीर के मसले पर भारत द्वारा अपनाई स्थिति की अमेरिका के कुछ समाचार पत्रों में कटु आलोचना की गई है और मुझे विश्वास है कि सभा के नेता इस समस्या की सभी आशंकाओं को दूर कर देंगे।

जहां तक निर्वाचित मुखिया का प्रश्न है, मैं एक लोकतंत्रवादी के रूप में इसका खुले दिल से स्वागत करता हूं। जहां तक भारतीय झंडे और कश्मीर के झंडे का प्रश्न है इस मुद्दे पर सभा में काफी समय तक चर्चा हुई। और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जम्मू और कश्मीर की जनता ने तथा इसकी सरकार ने भारतीय झंडे की सर्वोच्चता स्वीकार की है। जहां तक प्रधानमंत्री द्वारा दिनांक 24 जुलाई को अपने वक्तव्य में चौथे महत्वपूर्ण मसले अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के उल्लेख करने का संबंध है, मुझे इसके बारे में कुछ आशंकायें हैं, लेकिन भारत का एक नागरिक होने के नाते मैं यह कहने को तैयार हूं कि यह हमारी राज्य व्यवस्था में कश्मीर की जो असाधारण नाजुक स्थिति है, संभवतः उसी के फलस्वरूप मैं समझता हूं कि समय के साथ-साथ यह समस्या सुलझ जाएगी तथा सम्पत्तियों के मुआवजे के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के मामले को संतोषजनक ढंग से निपटा लिया जाएगा।

मैं एक बहुत ही महत्वपूर्ण टिप्पणी करना चाहता हूं। मैंने गत दो वर्षों के दौरान भारत सरकार द्वारा कश्मीर के मामले को पृथक रूप से लेने की प्रवृत्ति देखी है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से मुझे इस स्थिति से कोई प्रतिरोध नहीं है कि स्वदेशी दृष्टिकोण से मैं एक जिम्मेवार नागरिक के रूप में यह कहूंगा कि कश्मीर के मामले में विशेषकर, इसके निर्वाचित मुखिया के बारे में की गई कोई कार्यवाही तथा अपनाई जाने वाली किसी भी प्रवृत्ति को भारत के प्रत्येक दूसरे राज्य, विशेषकर हैदराबाद पर असाधारण प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़ेगा। पिछले अवसर पर सभा के माननीय नेता पंडित नेहरू ने स्थिति संभाली और कहा था कि जहां तक निकटस्थ वर्तमान का संबंध है निजाम को किसी भी प्रकार से पद्च्युत नहीं किया जाएगा। जहां तक राजप्रमुखों का संबंध है इसके बारे में मेरा यह कहना है कि कश्मीर को कभी भी शेष भारत से पृथक रूप से नहीं माना जा सकता। मेरा यह निश्चित रूप से विश्वास है कि प्रधान मंत्री पंडित नेहरू ने इस मुद्दे पर अपना कोई पक्का विचार नहीं बनाया है और वे इस देश में लोकतान्त्रिक सरकार की प्रगति में विशेषतः राजप्रमुखों को जारी रखने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेंगे। मुझे पूरी उम्मीद है कि शीघ्र ही उक्त मामले के इस पहलू पर विचार किया जाएगा और यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त कदम उठाये जाएंगे कि राजप्रमुख व्यवस्था पूरी तरह समाप्त हो जाए। मुझे विश्वास है कि माननीय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू जानते हैं कि आज इस देश में

विभिन्न वर्गों द्वारा राजप्रमुखों की व्यवस्था को समाप्त करने के लिए एक भारी अभियान चलाया जा रहा है।

मैं नहीं समझता कि इस देश में हमें और विशेष रूप से भारत सरकार को संसद में अथवा संसद से बाहर इसे प्राप्त ताकत का जन-प्रतिनिधियों द्वारा जिनमें सभा में मेरे सामने बैठे अनेक जुझारु सज्जन भी शामिल हैं, दिये गए नपे तुले वक्तव्यों के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सकता है। विशेषतः जहां तक हैदराबाद का संबंध है, मेरा दृढ़ मत है और राज्य कांग्रेस की भी हमेशा यही राय रही है और जहां तक कि उसकी आज भी यह राय है कि निजाम को अपदस्थ किया ही जाना चाहिए, राज्य को विघटित किया ही जाना चाहिए, और यह कि सीमाओं का पुनर्निधारण किया ही जाना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इस देश की यह नीतिकुशल संस्था सुरक्षित नींव पर आधारित है, जन आकांक्षा पर आधारित है, अतः मुझे पूरी आशा और विश्वास है कि प्रधानमंत्री इस मसले की पुनः जांच करेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि कश्मीर में आरंभ की गई राजप्रमुख प्रणाली को समाप्त न किया जाए। इसे धीरे-धीरे देश के विभिन्न अन्य भागों में भी युक्तियुक्त रूप से लागू किया जाए।

जहां तक इस मामले के अन्तर्राष्ट्रीय पहलू का संबंध है, मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है। पिछले प्रधान मंत्री द्वारा किए गए वक्तव्य को सुनने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि इस मसले के अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं का सही तरीके से समाधान नहीं किया गया था—क्योंकि वह एक ओर तो कश्मीर सरकार और दूसरी ओर भारत सरकार के बीच हुए आतंरिक समझौते को स्पष्ट कर रहे थे— मैंने अपना संशोधन प्रस्ताव रखा था। लेकिन प्रधान मंत्री द्वारा दिए गए बड़े ही सुविस्तृत वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए मैंने अपना प्रस्ताव वापस लेने का अनुरोध किया मैं इस संबंध में एक अथवा दो बातें कहना चाहूंगा। मुझे आशा है कि इन्हें भ्रामक नहीं समझा जाएगा अथवा इनका गलत अर्थ नहीं लिया जाएगा। विदेशों में हमारे बारे में धारणा है कि हम खरगोश को साथ लेकर दौड़ने का और शिकारी कुत्ते की मदद से शिकार करने का प्रयास कर रहे हैं। आइये हम कश्मीर के संबंध में कुछ वर्ष पहले की स्थिति पर दृष्टि डालें और देखें कि वहां क्या घटनाएं हुई हैं। हमने वहां से सैन्य बल हटाने के संबंध में मैकनॉटन के प्रस्तावों को पूर्णतः

अस्वीकार कर दिया है और जब मैं कहता हूं कि प्रधान मंत्री ने सुरक्षा परिषद में डा० ग्राहम की नियुक्ति के प्रस्ताव के एक भाग विशेष को अस्वीकार कर दिया है, तो मैं नहीं समझता कि मैं कोई गलत बयानी कर रहा हूं। हम डा० ग्राहम को सहयोग देने के लिए सहमत हो गए हैं। वस्तुतः जिनेवा में उनसे परामर्श करने के लिए कुछ ही दिनों बाद भारत से एक शिष्टमंडल वहां जा रहा है। मैं कुछ हद तक अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचार और ऐसे अन्य तौर तरीकों में विश्वास करता हूं लेकिन मैं चाहता हूं कि हमारी सरकार उन अन्तर्राष्ट्रीय दुरभिसंधियों का थोड़ा और प्रतिरोध करें जिन्हें इस कश्मीर-समस्या को पांच वर्षों से भी अधिक समय से जीवित रखने और प्रत्येक अवसर पर इसे मृत घोड़े की भांति पीटने की नीति विशेष के माध्यम से इस देश के ऊपर थोपने की मांग की जा रही है।

तकनीकी रूप से, सुरक्षा परिषद की कार्यसूची से कश्मीर के प्रश्न को वापस लेने का कोई कारण नहीं हो सकता, किन्तु मैं यह मानता हूं कि हम सुरक्षा परिषद को स्पष्ट बता सकते हैं, "हमने लगभग पांच वर्षों के लिए आपकी दीर्घकालिक युक्ति अपनाई थी, हमने इस युक्ति का पर्याप्त उपयोग किया था। हम एक बन्द गली में दौड़ रहे हैं जहां से निकलने का कोई रास्ता नहीं है। इसके परिणामस्वरूप हम अपनी इस स्थिति को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए तैयार हैं कि हमें इस बात से कुछ लेना देना नहीं है कि सुरक्षा परिषद क्या करने जा रही है। "वस्तुतः विगत समय में दो भिन्न अवसरों पर हमारी यह स्थिति रही है। मुझे खुशी है कि प्रधान मंत्री, पंडित नेहरू ने सैन्य बल को हटाने के बारे में किए गए अनेक प्रस्तावों को अस्वीकार किए जाने की बात का उल्लेख किया। इसी प्रकार मुझे विश्वास है कि हम सुरक्षा परिषद को बता सकते हैं, "हम अन्तर्राष्ट्रीय शतरंज बोर्ड पर अब और अधिक समय तक मोहरा बने नहीं रहना चाहते हैं। हम कश्मीर की धरती को अन्तर्राष्ट्रीय दुरभिसंधि और तोड़-फोड़ का अड्डा नहीं बनने देंगे।

मुझे इस बात पर गहरा रोष है कि विगत पांच वर्षों के दौरान ऐसे विभिन्न विचारों से सुरक्षा परिषद द्वारा भेजे गए, यहां अनेक मिशन आए हैं कि हमारे भू-भाग की एक-एक इंच नक्शे पर लाई जाए। दरअसल इस मुद्दे पर मुझे बड़ा दुख है कि जिस प्रकार विदेशी मिशन उक्त स्थान पर हमारा ध्यान हटाने और लोगों की संकल्पना को भ्रमित करने के लिए तथा कश्मीर से इस जटिल मामले पर हमें कोई समझौता करने से रोकने के लिए आए हैं, इससे इस देश की सुरक्षा को प्रायः खतरा ही उत्पन्न हुआ है। मैं प्रधान मंत्री से यही अनुरोध करता हूं कि इस मसले पर थोड़ा और गहराई से तथा स्पष्ट रूप से विचार किया जाए—मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपने प्रयास में वह स्पष्टवादी नहीं हैं। मैं यह

कहता हूं कि उन्हें सुरक्षा परिषद को यह बात जतला देनी चाहिए कि हम इस मूर्खतापूर्ण रास्ते पर अब और चलना स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि मैं समझता हूं कश्मीर के इस मसले पर हमारे इतिहास के पांच वर्ष बर्बाद हो गए हैं।

मैं युद्ध की मांग करने वाला परपीड़क नहीं हूं। अपितु इसकी बजाए मैं यह मांग करने वाला यथार्थवादी हूं कि इस देश के हितों की रक्षा की जानी चाहिए। मैं यहां, आमतौर पर, कश्मीर के संबंध में समझौते का स्वागत करने के लिए तैयार हूं, यद्यपि संविधान विशेषज्ञ विशेषरूप से विलय की शर्तों से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 370 को देखते हुए, इस दस्तावेज को फालतू की चीज समझें। भारत का नागरिक होने के नाते मैं महसूस करता हूं कि कश्मीर की वर्तमान स्थिति को देखते हुए इसके प्रति हमें पूर्ण सहानुभूति दर्शानी चाहिए, क्योंकि हमारा भाग्य उक्त राज्य, जहां से हम पांच अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं में प्रवेश कर सकते हैं, के भाग्य के साथ पक्के तौर पर भारत की विदेश नीति को जोखिम में डालने के लिए की जाने वाली किसी भी चेष्टा, इस देश की सुरक्षा प्रणाली को भंग करने के लिए किए जाने वाले किसी भी कुप्रभाव की निन्दा की जानी चाहिए और मैं ऐसे कार्यों की निन्दा करता हूं। मेरा अनुरोध है कि ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जाना चाहिए जिससे हमारे देश की सुरक्षा और हमारी व्यवस्था जोखिम में पड़े।

10

रेलवे

I

रेल अभिसमय समिति*

मैं प्रस्ताव करता हूः—

कि मूल प्रस्ताव में निम्नलिखित अन्तःस्थापित किया जाएः

"कि यह सभा रेल वित्त को सामान्य वित्त से पृथक करने से संबंधित रेलवे उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व के लिए देय लाभांश की वर्तमान दर और अन्य संबंधित मामलों की पुनरीक्षा के लिए नियुक्त समिति के परतिवेदन, जिसे 30 नवम्बर, 1954 को संसद में प्रस्तुत किया गया था, में की गई सिफारिशों की जांच करके सिफारिश करती है कि आगे जांच इस प्रकार की जाये, जिस प्रकार रेलवे द्वारा मूल्यह्रास निर्धारित करने की मांग की गई है और यह भी सिफारिश करती है कि देश में सभी स्थानों पर एक उद्योग के लिए एक दर के आधार पर भाड़े को औचित्यपूर्ण बनाया जाये।

संकल्प प्रस्तुत करने के पश्चात यह उचित ही है कि यह बहुत की महत्वपूर्ण वाद-विवाद श्री तुलसीदास द्वारा प्रारम्भ किया जाना चाहिए था, जिन्होंने वर्ष 1924 के रेल पृथक अभिसमय और उसके पश्चात बनाये गये उपबन्धों के जारी रखने संबंधी इस संयुक्त प्रवर समिति में कार्य किया है। श्री तुलसीदास एक अनुभवी व्यापारी हैं और बहुत ही स्वाभाविक ढंग से उनके जांच करने का यह प्रयास रहा है कि क्या रेलवे की वित्तीय स्थिति मजबूत है, क्या निकट भविष्य में इसकी स्थिति अच्छी होने की सम्भावनाएं हैं और उन्होंने इन प्रश्नों का अकाट्य उत्तर दिया है। व्यापारी न होने के कारण मैं इस संबंध में अधिक तर्क नहीं दे सकूंगा मैं इस प्रश्न पर पृथक दृष्टिकोण से विचार करने का प्रस्ताव करता हूं। समिति के इस प्रतिवेदन में रेलवे प्रशासन की सभी छोटी-बड़ी बातें शामिल की गई हैं। लेकिन इस अति महत्वपूर्ण मामले को निपटाने के लिए समिति की अवधा

*15 दिसम्बर, 1954 को रेल अभिसमय समिति की रिपोर्ट के बारे में हुए वाद-विवाद से। कालम् 2919-2920, 2929-2940।

दर्जन बैठकें भी नहीं हुई है। मैं समिति के सदस्यों की योग्यता अथवा ईमानदारी अथवा समिति की प्रक्रिया के बारे में कोई आक्षेप नहीं करना चाहता हूं विशेषरूप से जबकि उपाध्यक्ष महोदय इस समिति के सभापति थे। लेकिन मुझे खेद है कि रेलवे पृथक्करण अभिसमय की विभिन्न शाखाओं की जांच करने के लिए इस समिति की तकनीकी योग्यता उतनी नहीं थी जितनी होनी चाहिए थी। मैं इस बात को वरीयता देता कि इस मामले की जांच संयुक्त संसदीय समिति के स्थान पर किसी विशेषज्ञ समिति द्वारा की जाती। जैसा कि आपको स्मरण होगा, रेलवे पृथक्करण अभिसमय जब वर्ष 1924 में बना तो यह रेलवे प्रशासन और वित्तीय स्थिति की दीर्घकालिक, विस्तृत और तकनीकी जांच के निष्कर्षों के आधार पर बनाया गया था। मुझे इस स्थिति की पूर्ण रूप से जानकारी है। और मुझे विश्वास है कि आप भी उस बात से असहमत होंगे। मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि निश्चित रूप से संसदीय प्रक्रिया आवश्यक बन गई है कि इस सदन तथा दूसरे सदन की संयुक्त प्रवर समिति को इस मामले की जांच करनी चाहिए और सिफारिश करनी चाहिए जिसके आधार पर रेल मंत्री, यह संकल्प लाये हैं जो कार्यसूची में सम्मिलित है। लेकिन मैं इस मुद्दे पर बहुत ही स्पष्ट रूप से यह महसूस करता हूं कि जिस प्रकार इस बहुत ही जटिल वित्तीय और प्रशासनिक प्रश्न का आधा दर्जन बैठकों में ही निपटान किया गया, यह निश्चित ही व्यापक रूप से देश और इस समिति की सिफारिशों के संदर्भ में इस सदन के अधिकारों के अनुरूप नहीं है।

मैं इस समिति द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों के मूल पाठ की जांच करूंगा। मुझे यह कहते हुए खेद है कि इस समिति को रेलवे बोर्ड द्वारा प्रस्तुत तथ्यों और दिए परामर्श पर अत्याधिक निर्भर रहना पड़ा। कोई गलती नहीं होनी चाहिए रेलवे बोर्ड को उच्च अधिकार प्राप्त हैं। यह संपूर्ण रूप से सुरक्षित है। इस सदन का कोई भी माननीय सदस्य इसकी शाखाओं अथवा इसकी गतिविधियों की यदि जांच करने का कुछ भी प्रयास करता है तो उसको परिणाम उत्साहजनक नहीं प्राप्त होगा।

मैं इस रिपोर्ट के पैरा 18 की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं जिसे समिति ने इस संबंध में प्रस्तुत किया है। यह प्रश्न अधिक पूंजी निवेश के बारे में है। इस उदाहरण में लिखा है:

"रेलवे बोर्ड द्वारा अधिक पूंजी निवेश के बारे में सुनिश्चित ढंग से मूल्यांकन किया जाना चाहिए।"

मुझे यह कहते हुए खेद है कि संसद के दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति इस

निष्कर्ष पर नहीं पहुंची है। क्या यह रेलवे बोर्ड का कार्य नहीं है कि वह उचित मूल्यांकन करे कि क्या रेलवे की वित्तीय व्यवस्था में अधिक पूंजी निवेश किया गया है अथवा नहीं। यह मूल्यांकन करने का कार्य समिति का है और इससे भी अधिक संसद का कि वह मूल्यांकन करे कि क्या यह सच है अथवा नहीं। मैं ऐसी टिप्पणी करने के लिए क्षमा याचना करता हूं क्योंकि मैं इसके उस तरीके के बारे में बहुत ही चिन्तित हूं जिस तरीके से समिति की सिफारिशों को इस सदन में रखा गया है। उन सिफारिशों के आधार पर ही रेल मंत्री महोदय ने यह संकल्प प्रस्तुत किया है। संकल्प की भाषा बहुत ही स्पष्ट है:

"....रेल वित्त को सामान्य वित्त से पृथक करने के संबंध में रेल उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व के लिए देय लाभांश की वर्तमान दर और अन्य संबंधित मामलों की समीक्षा के लिए नियुक्त समिति के प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों का अनुमोदन करती है..... ।"

रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के अतिरिक्त इस रिपोर्ट में सम्मिलित प्रत्येक वाक्य के अनेक निहितार्थों को ध्यान में रखते हुए, मैं यह महसूस करता हूं कि इसका परिणाम यह है कि संसद के दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट के बारे में मुझे इस प्रकार स्वाभाविक दृष्टिकोण अपनाना पड़ा।

इसके बाद मैं इस प्रतिवेदन के पैरा 30 की ओर सदन का विशेषरूप से ध्यान आकर्षित करता हूं ताकि इस मुद्दे को सुनिश्चित किया जा सके और ताकि मैं अपनी उस व्यथा को व्यक्त कर सकूं जो इस विषय से संबंधित विस्तृत साहित्य का अध्ययन करते समय मुझे महसूस हुई। इस पैराग्राफ में क्या क्या गया है यह पृष्ठ 14 में सबसे नीचे है और यह पृष्ठ 15 पर भी जारी है।

पर्याप्त चर्चा करने के बाद समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि विकास संबंध निधि द्वारा अपने संसाधनों से किसी कार्यक्रम का खर्चा पूरा न किये जाने की स्थिति में रेलवे के लिए धनराशि उन परियोजनाओं अथवा निर्माण कार्यों, जो विकास स्वरूप के हैं के उपयोग के लिए सामान्य राजस्व से दी जानी चाहिए।"

मैं यह महसूस करता हूं कि इस स्थिति तक पहुंचने के लिए क्रम परिवर्तन और संयोजन की श्रृंखला की जांच की गई है जिसमें रेल मंत्री और परिवहन मंत्री ने आंकड़ों को मूल्यह्रास निधि, आरक्षित कोष, विकास कोष और लाभांश आदि में मिला

दिया है। ऐसी स्थिति में उपाध्यक्ष महोदय ने जो समिति के सभापति भी थे टिप्पणी की कि उन्हें इस मामले में कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं है और न ही इस संबंध में कोई व्याकुलता होनी चाहिए।

ऐसा कहकर मैं आपसे अनुरोध करता हूं और मैं दोहराता हूँ कि आपके साथ जिस किसी ने भी अनेक सांविधिक समितियों और प्रवर समितियों में कार्य किया है, मेरा अभिप्राय आपकी भर्त्सना करना नहीं है और न ही मैं ऐसा कहने की बात ही सोच सकता हूं।

इस संकप के सदन में प्रसतुत किये जाने के अनेक कारण हैं—कार्य मंत्रणा समिति का सदस्य होने के नाते, मुझे उनकी जानकारी है। इसे अंतिम चरण में प्रस्तुत किया गया। मैं उन सभी कारणों को पढ़ नहीं पाया। लेकिन 900 करोड़ रुपये के उपक्रम के संकल्प का हस्र यह है कि उसे इस प्रकार निपटाया जा रहा है। मैं पुनः कहना चाहता हूं कि जहां तक रेलवे और इसकी सामान्य वित्त व्यवस्था का संबंध है इसकी एक सुयोग्य तकनीकी और विशेषज्ञ दल द्वारा जांच कराई जानी चाहिए थी।

प्रभावी सिफारिशें आगामी पांच वर्षों तक यथापूर्व स्थिति में ही बनी रहेगी। मैंने सदन का ध्यान इस विशेष सिफारिश की ओर दिलाया है। यह सिफारिशों की सूची संख्या 18 (पैरा-37) में विद्यमान है। रेल मंत्रालय को इन पांच वर्षों के दौरान रेलवे के सामान्य कार्य के बारे में एक समीक्षा, अगली अभिसमय समिति के विचारार्थ प्रस्तुत करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में रेलवे बोर्ड के लिए पूर्णाधिकार-पत्र है, जिसे अगले पूरे पांच वर्षों तक पूरा करना है क्योंकि यह भारत में रेलवे प्रणाली के प्रशासन को संचालित करता है। मुझे अफसोस है कि इसे जिस प्रकार से करना चाहिए, उस ढंग से नहीं किया गया। मुझे पता है कि इस सदन में हमारे देश के इस बहु-उपयोगी उपक्रम के विभिन्न प्रशासनिक और वित्तीय मामलों पर प्रतिवर्ष जबकि रेलवे की अनुदानों की मांगों पर चर्चा की जाती है, तो हमें चर्चा करने का अवसर प्राप्त होता है। यह प्रश्न विशेषज्ञों के लिए है इसे उस ढंग से नहीं निपटाया गया है जिस ढंग से निपटाया जाना चाहिए था। अपने संशोधन के बारे में, मैं विस्तार से कहना चाहता हूं।

यही मुख्य मुद्दा है। यह जटिल और काफी कठिन प्रश्न है और कार्य को ध्यान में रखते हुए प्रवर समिति के पास पर्याप्त तकनीकी कौशल और समय नहीं है। मेरे तर्क का यही मुख्य आधार है। मैंने विश्वास दिलाया है कि मेरा किसी व्यक्ति पर भी आक्षेप लगाने

का इरादा नहीं है लेकिन यह मुद्दा उठाने की मुझे पूरी स्वतंत्रता है और सामान्य रूप से यह कहने का अधिकार है कि पैरा-37 में इस मामले का समिति ने जिस प्रकार उल्लेख किया है उसके प्रति मैं अपना असंतोष प्रकट करता हूं। अपने संशोधन पर बोलते हुए मेरे पास एक वक्तव्य है। अगर इसमें कोई तथ्यात्मक गलती है तो रेल उपमंत्री और मंत्री इसे ठीक कर देंगे।

आइऐ माल भाड़े के ढाचें पर नजर डालें। रानीगंच कोयला क्षेत्र से, आसनसोल से कलकतता तक 125 मील की दूरी तक कोयले का ढुलाई भाड़ा- 5-7-0 रुपये है। धनबाद से कलकत्ता तक-161 मील की दूरी है और ढुलाई भाड़ा-7 रुपये है। आदरा से इसी स्थान के लिए दूरी-177 मील है-के लिए भाड़ा 7-11-0 रुपये है। मैं आपको दरों के माल भाड़े के दो मानदण्डों का उल्लेख करता हूं। एक आसनसोल, धनबाद और आदरा से बम्बई के लिए है औ.. इन्हीं तीन स्थानों से अहमदाबाद और बड़ौदा• तक के लिए। आसनसोल से बम्बई तक माल भाड़ा 18-3-0 रुपये है और इसकी कुल दूरी 1,216 मील है। आसनसोल से अहमदाबाद की दूरी 1,1 97 मील है और माल भाड़ा है 20-3-0 रुपये आसनसोल से बड़ौदा की दूरी 1,192 मील है और माल भाड़ा है-20-3-0 रुपए। दूसरे शब्दों में बम्बई की अपेक्षा अहमदाबाद और बड़ौदा कम दूरी के लिए अधिक भाड़े का भुगतान करते हैं। यह न कहा जाए कि मैं एक ही उदाहरण ले रहा हूं। मैं दो और उदाहरण देना चाहता हूं। धनबाद से बम्बई की दूरी 1,180 मील है और माल भाड़ा है 18-3-0 रुपए। धनबाद से बड़ौदा की दूरी है 1,155 मील और माल भाड़ा है 19-12-0 रुपए। धनबाद से अहमदाबाद की दूरी है 1,160 मील और माल भाड़ा है-19-14-0 रुपए। जहां तक इन्दौर का संबंध है इससे मेरा तर्क सामान्य हो जाएगा और यह पूरे देश के लिए लागू माना जा सकता है। समिति के प्रतिवेदन से यह आम धारणा है कि हालांकि इसे स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है, दरों और भाड़े में वृद्धि की जानी चाहिए।

***पाद-टिप्पण:** इस अवसर पर उपाध्यक्ष महोदय ने सदस्य से कहा कि वे यह बताएं कि क्या सदन यह समझे कि माननीय सदस्य यह चाहते हैं कि अभिसमय समिति के गठन से पूर्व दोनों सदनों के सदस्यों की एक संयुक्त समिति का गठन किया जाए, जो इस मामले की छानबीन करे? एक विशेषज्ञ समिति द्वारा इस मामले की जांच की जानी चाहिए ताकि रेलवे बोर्ड द्वारा ज्ञापन, आदि के माध्यम से जो तथ्य प्रस्तुत किए गए, उनके अतिरिक्त अभिसमय समिति किसी निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुंच सके।

अब मैं पैराग्राफ-23 का उल्लेख करना चाहता हूं। इस संबंध में मेरे दो मुख्य तर्क हैं—जैसाकि इस प्रतिवेदन में भी कहा गया है, रेलवे की वित्तीय स्थिति प्रोत्साहनवर्धक नहीं है। यह एक समस्या प्रधान मुद्दा है। अंशदान द्वारा 5 करोड़ रुपए की वृद्धि के प्रस्ताव से, निश्चित रूप से दरों और भाड़े में वृद्धि होगी। ताकि यह 30 करोड़ रुपए से बढ़कर 35 करोड़ रूपए हो जायेगी। प्रतिवेदन के पृष्ठ 7 पर पैराग्राफ 14 में कहा गया है कि:—

"तथापि, उनहोंने कहा है कि इससे अगले पांच वर्षों के दौरान विकास कार्यों पर व्यय करने के लिए विकास निधि से कोई धनराशि तब तक विनियोजित नहीं की जा सकती जब तक कि माल भाड़े में सामान्य रूप से वृद्धि न की जाए अथवा लाभांश की दर में कमी करके लाभांश देयता राशि में कमी की जाए। रेलवे की वित्तीय व्यवस्था का सारा ढांचा ही देश की अर्थव्यवस्था की सामान्य स्थिति पर निर्भर है। इससे संबंधित विभिन्न मुद्दों को मुख्यतः दो प्रमुख श्रेणियों में रखा जा सकता है—यानी किराया और माल भाड़ा-जोकि रेलवे प्रशासन के वित्त को बल प्रदान कर सकते है।"

मैं माल भाड़े और यात्री किराये को, विशेषरूप से मालभाड़े को युक्तिसंगत बनाए जाने के बारे में बहुत ही चिन्तित हूं, और इसके बारे में कोशिश ही नहीं की गई है। रेल और परिवहन उपमंत्री, श्री अलगेसन ने रेलवे दर न्यायाधिकरण के कार्य के बारे में एक प्रश्न का उत्तर दिया है। जब उनसे पूछा गया कि न्यायाधिकरण के पास इस मुद्दे को विचारार्थ भेजा गया था, तो उन्होंने इसका नकारात्मक उत्तर दिया। जब उनसे इस बारे में आगे पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। लेकिन, इस प्रश्न पर पिछले अनेक वर्षों से विचार किया जा रहा है। प्रत्यक्षतः रेलवे बोर्ड और रेल-मंत्रालय — मैं यह नहीं कहूंगा कि वे इस बारे में किसी निर्णय पर पहुंचने के इच्छुक नहीं हैं — किसी निर्णय पर पहुंच पाने में असमर्थ हैं। यहां रेलवे बोर्ड के लिए दो साधन उपलब्ध हैं। न्यायाधिकरण के पास अधिक कार्य नहीं है। ये इन्हीं के द्वारा कहे गये शब्द हैं। वे आर्थिक, औद्योगिक तथा अन्य स्थितियों के अनुसार माल-भाड़े की दरों की सतत समीक्षा क्यों नहीं कर सकते? न्यायाधिकरण में याचिकायें क्यों दायर की जायें? वे देश की आर्थिक और औद्योगिक प्रगति को ध्यान में रखकर इसकी सतत समीक्षा क्यों नहीं कर सकते? माल-भाड़े की दरें पूर्णतः अव्यवस्थित हैं। दरों और निर्धारित किराये में कोई तालमेल नहीं है। इसीलिए मैंने एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक के आंकड़े उद्धृत किये हैं लेकिन मैं सभा का समय नष्ट करना नहीं चाहता।

"रेलवे रेट्स ट्रिब्यूनल" की जाने वाली शिकायतों की प्रतीक्षा करता है। यदि रेल मंत्री मालभाड़े को युक्तियुक्त बनाने के प्रश्न का समाधान करना नहीं चाहते, तो उन्हें एक अन्य निकाय नियुक्त करने दीजिए। न्यायाधिकरण एक सांविधिक निकाय है और जब तक हम संविधान में संशोधन नहीं करते इसे बनाये रखने के लिए बाध्य हैं। लेकिन मैं यह अनुरोध कर रहा हूं कि मालभाड़े को युक्तियुक्त बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बिना औद्योगिक प्रगति में रुकावट आयेगी और आगामी वर्षों में सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत आने वाले मामलों का उचित रूप से निपटान नहीं किया जा सकेगा।

मैं दो और टिप्पणियां करना चाहूंगा। मैं इस बात से खुश नहीं हूं कि संयुक्त समिति इस उचित निष्कर्ष पर पहुंचने में असमर्थ रही कि क्या रेलवे वाणिज्यिक उपक्रम है अथवा सार्वजनिक उपयोगिता का उपक्रम है।

क्योंकि मेरा पूरा तर्क यह है । मैं बड़ी गंभीरता और सद्भाव से कहता हूं कि यह खातों में जोड़ तोड़ करने—जोड़ तोड़ का अभिप्राय सामान्य चालाकी से है न कि गबन से—सभी निधियों की राशि विभिन्न जेबों में भरने और उसे पुनः श्रेणीबद्ध करने जैसा कार्य है; और जब तक आप इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते कि यह सार्वजनिक उपयोग का उपक्रम है अथवा वाणिज्यिक उपक्रम है, आप ऐसी नीतियां नहीं बना सकेंगे जिनसे समस्याओं का समाधान हो।

यह विशुद्ध रूप से और सामान्यतः सार्वजनिक उपयोग के लिए है। अन्य चीजों को लीजिए। टेलीफोन सार्वजनिक उपयोग की चीज है। डाक सुविधायें सार्वजनिक उपयोग के लिए हैं। यदि मैं कोई पत्र गाजियाबाद भेजता हूं अथवा धनुषकोडि इसमें कोई अंतर नहीं है। मैं केवल दृष्टांत दे रहा हूं। ये सार्वजनिक उपयोग के उपक्रम हैं और इस सभा को इस मुद्दे पर स्वयं ही निर्णय करना चाहिए।

मैं समिति की इस निस्सार सिफारिश अथवा उसके इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हूं कि यह दोनों का मिला जुला रूप है। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह सार्वजनिक उपयोग के लिए है और मुझे आशा है कि मुझे यह कहने का अधिकार है।

दूसरे जहां तक लाभांश की दर का प्रश्न है, मैं समझता हूं चार प्रतिशत लाभांश बहुत ही अधिक है। मैं तीन प्रतिशत कहना ठीक समझता हूं जो कि लगभग उचित दर है। मैंने रिपोर्ट के पैरा 30 की ओर ध्यान दिलाया है जिसमें कहा गया है कि यदि रेलवे

भुगतान करने में असमर्थ हो तो ऐसी स्थिति में सामान्य राजस्व का भुगतान करने के लिए पुनः कहा जाना चाहिए। रेलवे से सामान्य राजस्व में और सामान्य राजस्व से रेलवे में, यह आदान प्रदान क्यों किया जाये?

मैं समझता हूं कि सभा को इस मामले पर अपनी बहुत ही स्पष्ट राय प्रकट करने का अधिकार है, लेकिन यह संशोधन केवल चर्चा के लिए है। मैं इस मुद्दे पर मतदान कराने के लिए बाध्य करना नहीं चाहूंगा क्योंकि मैं हमेशा समझता हूं कि संशोधन रखने का अभिप्राय किसी महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर ध्यान आकर्षित करना होता है क्योंकि संशोधन रखने वाले सदस्य विशेष उन्हें समझना चाहते हैं।

II

रेल कर्मचारियों का वेतन ढांचा:

मुझे यकीन है कि देश के इस सबसे बड़े जनोपयोगी सुविधा तंत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या रेलवे बोर्ड की रोजगार नीति है। सामान्यतः मैंने इस समस्या पर, रेल बजट एवम् उसके अन्य सभी संघटकों के साथ चर्चा की होती, लेकिन आज मुझे इस बारे में एक विशेष दायित्व निभाना है। आल इन्डिया रेलवे मिनिस्टीरियल स्टाफ एसोसिएशन के अयक्ष के रूप में रेलवे बोर्ड को वेतन सत्याग्रह की सूचना देने के उपरान्त, मैं सदन से अपना भाषण रेल प्रशासन की रोजगार नीति की समस्या तक ही सीमित रखने की अनुमति देने का अनुरोध करता हूं।

रेल मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने वाद-विवाद चालू करने वाले मेरे आदरणीय मित्र श्री वी० वी० गिरि से लेकर श्री अशोक मेहता और श्री गोपालन तक, सभी वक्ताओं के इस प्रश्न पर पूर्ण मतैक्य पर ध्यान दिया होगा कि इस देश में रेल-मंत्री की नौकरी में वर्तमान दस लाख कर्मचारियों के हित में एक अन्तिम समाधान खोजने का समय आ गया है। रेल मंत्री बजट भाषण के पैरा 4 में कहते हैं:

> "नेशनल फेडरेशन आफ इंडियन रेलवे मैन" और रेलवे बोर्ड के बीच गत पूरे वर्ष सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण रहे हैं। यह मेरा दृढ़ मत है कि मतवैभिन्य को बातचीत द्वारा अच्छे ढंग से सुलझाया जा सकता है और मैं विश्वास दिलाता हूं कि इस प्रयोजन के लिए फेडरेशन और रेलवे बोर्ड के बीच शीघ्र ही बैठक आयोजित की जायेगी।"

मैं आल इंडिया रेलवे मिनिस्टीरियल स्टाफ एसोसिएशन का अध्यक्ष हूं और मैं नहीं जानता कि आज वे किससे परामर्श करेंगे, जबकि रेल बोर्ड द्वारा अपनाई गई एक वर्ग को दूसरे से भिड़ाने की नीति के चलते सभी राजनैतिक गुटबाजी से त्रस्त हैं। मैं कहता हूं कि "नेशनल फेडरेशन आफ रेलवेमैन" के दो धड़े, इस संगठन पर नियंत्रण पाने की

---

*रेल बजट पर सामान्य चर्चा पर वाद-विवाद से, लोक सभा 5 मार्च, 1956, कॉ० 1621-31

प्रतिद्वन्दिता में उलझे हुए हैं। मेरा लम्बा अनुभव है और जहां तक मैं समझता हूं उत्तरदायित्व और अधिकार की भावना से कही गई मेरी बात का विरोध करने का रेल मंत्री भी प्रयास नहीं करेंगे। मेरा अनुभव यह है कि जहां तक रेल-तंत्र के रेल कार्मिकों और नियोक्ता के सम्बन्धों का ताल्लुक है रेल प्रशासन द्वारा एक पक्ष के प्रति दर्शाया गया पक्षपात ही सभी मुसीबतों की जड़ है।

श्री गिरि का यह कथन बिल्कुल सही था कि बेजवाड़ा कन्वेंशन को मान्यता दी जाती है तथा नान-बेजवाड़ा वर्ग को महत्व प्रदान नहीं किया जाता। मैं उनसे यह देखने का अनुरोध करूंगा कि रेल-तंत्र में इस प्रकार के पक्षपातपूर्ण राजनैतिक आधारों को आगे चलते रहने की अनुमति नहीं दी जाए और किसी पक्ष-विशेष को विशेष ढंग से चलने हेतु उकसाया नहीं जाए।

इसके अतिरिक्त, रेल मंत्री ने पैरा 48 में यह बताया है:

> "रेल कर्मचारियों पर काम के भार और दायित्व के बढ़ने के साथ-साथ ऐसी समस्याओं की जटिलता भी बढ़ती जा रही है जिनसे उन्हें निपटना होता है। आगामी वर्षों में इस बारे में स्थिति और खराब होगी।"

उसके बाद उन्होंने कहा है:

> "तृतीय श्रेणी के निचले स्तर पर अधिकांश कर्मचारियों पर काम की जिम्मेदारी है इस तथ्य को, ग्रेडों में पदों के पुनर्वितरण के दौरान महत्व प्रदान किया जा सकता है, ताकि निम्नतम ग्रेड के पदों में समुचित कमी करते हुए क्लर्क, ट्रेन क्लर्क तथा अन्य संवर्गों के उच्चतर ग्रेडों की संख्या में संगत वृद्धि तथा स्टेशन मास्टरों के मामलों में समुचित समायोजन किया जा सके।"

मैं चाहता हूं कि माननीय रेल मंत्री कृपया यह स्पष्ट करें कि इस फार्मूले का, जिसका उल्लेख रेल बजट पर वक्तव्य में पहली बार किया गया है, वास्तविक अभिप्राय क्या है? मैं रेलवे के लिपिकों की ओर से जिनके लाभ के लिए यह फार्मूला बनाया गया है, अनुभव और अधिकार के साथ बोलने का दावा करता हूं कि रेलवे के लिपिकों ने इस विशेष फार्मूला का अध्ययन किया है और इससे संतुष्ट नहीं हैं।

मैं यह वक्तव्य देकर काफी दुखी हूं, लेकिन मैं यह पूरी जिम्मेदारी के साथ कहता हूं कि विभिन्न रेल संबंधों के साथ अपने अनुभव के पश्चात् मैं अधिकारिक स्थिति में

होऊंगा। आज रेल कर्मचारियों के पांच दिन के वेतन सत्याग्रह का अंतिम दिन है। मैं रेल मंत्री महोदय से अपने आंकड़ों को, यदि वे गलत न हों तो खंडन करने का आग्रह करता हूं। मैंने आंकड़े सभी महत्वपूर्ण स्टेशनों से प्राप्त किये हैं।

दिल्ली क्षेत्र में तृतीय श्रेणी के 6463 कर्मचारियों में से 6003 कर्मचारियों ने वेतन सत्याग्रह में भाग लिया है और अपना वेतन नहीं लिए हैं। खड़गपुर, मुग़्दाबाद, उदयपुर, खुर्दा रोड और वाल्टेयर के तृतीय श्रेणी के 2727 कर्मचारियों में से 2597 कर्मचारियों ने अपना वेतन लेने से इंकार कर दिया है। अजमेर, आसनसोल, झांसी, अहमदाबाद, कानपुर आदि के तृतीय श्रेणी के 6243 कर्मचारियों में से 6180 कर्मचारियों ने अपना वेतन लेने से मना कर दिया है। जमालपुर के तृतीय श्रेणी के 756 कर्मचारियों ने अपना वेतन लेने से इंकार किया है।

वाल्टेयर में रेल कर्मचारियों की कुल संख्या लगभग 50,000 है। रेलमंत्री महोदय को खुश करने के लिये वहां मात्र एक ही कर्मचारी ने अपने को इससे अलग रखा। मैं इस तरह के कई उदाहरण दे सकता हूं। लेकिन मुझे यह प्रश्न करने दीजिए। चार वर्षों से रेल लिपिकों से जुड़े रहने के कारण मुझे सीधी कार्यवाही करने से उन्हें रोकने का मौका मिला था। हममे से कोई भी रेल प्रशासन के लिए असुविधा पैदा करना अथवा इसे निष्क्रिय बनाना नहीं चाहता है। मुझे रेल लिपिकों की मांगों को स्पष्ट करने दीजिए। मैं उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित करता हूं।

पहली मद 96 प्रतिशत निपटान लिपिकों के 80—220 रु० के वेतनमान से संबंधित, केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के संदर्भ में है। केन्द्रीय वेतन आयोग ने इस प्रकार के दायित्वपूर्ण काम के लिए इस ग्रेड का निर्धारण यह दलील देकर किया है कि प्रायः उनका चयन इन पदों के लिए किया जाता है। सलाहकार समिति ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया। रेल मंत्री को निश्चित रूप से इस प्रश्न का उत्तर देना होगा। केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा सिफारिश किया गया 80—220 रु० के वेतनमान को क्यों 80—160 रु० और 160—200 रु० के दो भिन्न वेतनमानों में विभाजित किया गया है। रेल कर्मचारियों का एक बड़ा भाग लिपिकीय कर्मचारी वर्ग इस बात से बहुत दुखी है। मेरे साथ रेलवे बोर्ड के सदस्यों का बहुत मधुर संबंध है। मुझे किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है, लेकिन रेल तंत्र के खिलाफ बहुत कुछ कहना है। रेलवे बोर्ड अत्यधिक कठोर और भावनाशून्य हो गया है। यह एक दृष्टिविहीन और कल्पनारहित निष्क्रिय निगम हो गया है। मैं एक बार फिर स्वयं यह आश्वासन देता हूं कि मुझे रेलवे

बोर्ड के विशेष अधिकारियों के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। बल्कि सम्पूर्ण तरीका ही गलत है। मैं रेल मंत्री से इस प्रकार के रेल तंत्र को लम्बे समय तक जारी नहीं रखने का आश्वासन देने का अनुरोध करता हूं। पांच दिन के वेतन सत्याग्रह का पहला चरण आज समाप्त हो गया और कल के लिये में आश्वस्त हूं कि प्रदर्शन के पश्चात् रेलवे बोर्ड और रेल कर्मियों के बीच काफी व्यक्तिगत और घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जायेगा। अब प्रदर्शन समाप्त हो गया है। मैं चाहता हूं कि रेल मंत्री मुझे बतायें कि क्या इन पांच दिनों में इन लोगों ने कोई धीरे काम करो अथवा "काम रोको" हड़ताल की। इस प्रकार का कुछ नहीं था। मैं हर्षोल्लास के साथ घोषित करता हूं कि इन पांच दिनों में प्रत्येक रेल कर्मचारी ने पहले से अधिक काम किया है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर उन्हें यह अनुदेश दिए गये थे कि वे केवल प्रतीकात्मक विरोध ही करें और हम पाते हैं कि वे लोग पहली बार एकजुट हुए हैं। मैं अपने मित्र श्री लाल बहादुर शास्त्री से अनुनय आग्रह करता हूं कि वे उसे और आगे उत्तेजित नहीं करें बल्कि उनके उचित और तर्क संगत कठिनाईयों को दूर करें।

मुझे यहां बहुत से मामले प्राप्त हुये हैं। मेरे माननीय मित्र रेल कर्मचारियों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने की बातें करते हैं। अपने भाषण के पैरा 49 में उन्होंने रेल प्रबंधन में रेलकर्मियों की भागीदारी के संबंध में कुछ कहा है। यह बहुत अच्छा विचार है। हम सभी नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच सहभागीदारी की भावना को आगे बढ़ाने में उनकी कोशिश में उनके साथ हैं। लेकिन ये मामले क्या हैं। मेरे पास राष्ट्रीय स्तर के मामले की कई फाइलें हैं, जिन्हें मैं की गई मांगों सहित एक ज्ञापन के साथ अलग-अलग रूप से उठाने की कोशिश करूंगा। मैं यहां चार या पांच मामलों का उल्लेख करता हूं जो मेरे विचार से सदन को निश्चित रूप से यह दर्शाएंगे कि रेल कर्मचारियों की समस्याओं को उचित ढंग से नहीं निपटाया जा रहा है।

तत्पश्चात्, स्टोरों और सहायक स्टेशन मास्टरों की मांगों की बारी है। उनकी स्थिति क्या है? वे लोग 150—250 रु० का वेतनमान, पदोन्नति के पर्याप्त अवसर नियमों का समरूप प्रयोग, कथित दृष्टि जांचों से छुट, और अन्य कर्मचारियों को उपलब्ध राजपत्रित छुट्टियां प्राप्त करना चाहते हैं। क्या ये अनुचित मांगे हैं? इस पर सदन और देश को निर्णय करना है।

उसके बाद वेतन क्लर्कों के मसले की ओर देखें। इन गरीब व्यक्तियों को 2000 रु. की जमानत राशि देनी पड़ती है। लेकिन उनका वेतनमान क्या है? स्वाभाविक रूप

से उनकी स्थिति काफी दयनीय है जो लोग उत्तर, पूर्व और पश्चिम रेलवे जोनों में कार्यरत हैं, उनकी स्थिति पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

उसके बाद सराफों और खजांचियों की ओर ध्यान दें। यद्यपि उन्हें एक ठेका प्रणाली से दूसरी प्रणाली में लिया गया है, फिर भी उन्हें रेलवे पास तक नहीं दिए जाते हैं। अजमेर के रेलवे प्रशिक्षण स्कूल तथा भारत के अन्य भागों के ऐसे स्कूलों के अनुदेशकों का भी प्रश्न उठता है। उनकी स्थिति भी यही है। उसके बाद एक्स कबार्टेट क्लर्कों की समस्या है। मुझे आश्चर्य है कि क्या रेल मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने इस समस्या की ओर ध्यान दिया और यह जांच की, कि उनकी स्थिति क्या है?

उसके बाद स्टोर्स एकाउंटस क्लर्कों का प्रश्न उठता है। 1945 के बाद की सेवा भर्ती की स्थिति के अनुसार कहा जा सकता है कि पश्चिम रेलवे में लगभग 200 और अन्य रेल जोनों में ऐसे सैकड़ों व्यक्ति हैं। उनकी स्थिति क्या है? मुझे ऐसे अनेक मामलों का पता है, जहां भाई-भतीजावाद व्याप्त है। ऐसे मामलों की कई फाइलें मेरे पास मौजूद है। एक व्यक्ति को जिसे इसके लिए चुना गया था, उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति की गई क्योंकि उसके चुनाव में एक गलती होने की आशंका की गई थी। मैं रेल मंत्री को इस प्रकार के कई मामले दे सकता हूं।

रेल तंत्र में स्नातकों की स्थिति, संभवतः सबसे अधिक दयनीय है। उन्हें मैट्रिक पास लोगों के साथ जोड़ा जाता है और उनका वेतनमान क्या है? उनका वेतनमान 50-130 रु० है।

डिस्पेंसर का भी मामला सामने है। रेलवे अस्पताल की डिस्पेंसरियों में लगभग 4000 डिस्पेंसर हैं। वे केवल 80-220 रु० का वेतनमान और 160-450 रु० का एक सलेक्शन ग्रेड की मांग करते हैं। इस श्रेणी के कर्मचारी भिन्न प्रकार की अठारह ड्यूटी करते हैं। फिर भी उनके संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसी तरह, मैं रेल कर्मचारियों के विभिन्न श्रेणियों की कठिनाईयों के संबंध में अपना एक अलग मामला बना सकता हूं।

मैं यहां केवल उनकी समस्याओं को उचित, पर्याप्त और विवेकपूर्ण तरीके से हल करने तथा इन दस लाख रेल कर्मचारियों की ओर से देश को कुशल और निष्ठापूर्ण सेवा प्रदान करने का आश्वासन देने की ही बात कह सकता हूं। श्री वी० वी० गिरी ने कहा है कि उन्हें रेलवे के संबंध में 35 वर्ष का अनुभव है। मुझे इतना अधिक अनुभव तो नहीं है, किन्तु मुझे लगभग 27 से 28 वर्ष का अनुभव है और मैं विश्वास के साथ यह कह सकता हूं

कि हमारे रेल कर्मचारी देशभक्त हैं तथा वे निश्चित रूप से सही ढंग से कार्य करने के इच्छुक हैं बशर्ते कि उनकी मागों की ओर भी ध्यान दिया जाये। हम इन मांगों को सभा में अनगिनत बार उठा चुके हैं और ये एक तरह से वार्षिक ढिठाई बनकर रह गई हैं। मैं यह कहना चाहूंगा कि यही उपयुक्त समय है जबकि रेल मंत्रालय को सीधी कार्यवाही करने पर ध्यान देना चाहिए।

मैं इस बात को पुनः दोहराना चाहूंगा कि हम जैसे व्यक्तियों की सलाह पर ही हड़ताल के निर्णय को बार-बार टाला जाता रहा है, और वह इसलिए कि हम जैसे लोग यह नहीं चाहते हैं कि भारत में वर्तमान रेल तंत्र को जोखिम में डाला जाये, विशेषकर ऐसे समय में जबकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना चालू होने वाली है।

अंततोगत्वा, रेल विभाग को इस वर्ष पर्याप्त अतिरिक्त धन उपलब्ध हुआ है। क्या इसी बात को धयान में रखते हुए, इन रेल कर्मचारियों की कार्यकुशलता और सत्यनिष्ठा के बारे में कोई संदेह किया जा सकता है? निसंदेह, आप उनसे यह आशा नहीं कर सकते हैं कि वे उस फार्मूले से संतुष्ट हो जायें जिसकी सलाह मेरे माननीय मित्र श्री लाल बहादुर शास्त्री को रेलवे बोर्ड द्वारा अत्यधिक सरल भाव से दी गई लगती है कृपा करके वह इस सभा में स्पष्ट करें कि अपने फार्मूले के संबंध में उनका क्या कार्यवाही करने का विचार है और वह उसे कब तक कार्यान्वित कर सकेंगे। श्री वी० वी० गिरि द्वारा उस सुझाव से मैं व्यक्तिगत रूप से सहमत नहीं हूं कि एक दूसरा वेतन आयोग स्थापित करने के बारे में विचार किया जाना चाहिए। केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के विषय में क्या रहा? इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी, आयोग की सिफारिशें पर्याप्त रूप से कार्यान्वित नहीं की गई हैं। यदि एक दूसरा वेतन आयोग नियुक्त किया गया तो ईश्वर ही जानता है कि वह कितना समय लेगा। जहां तक कुछ अंतरिम राहत देने से संबंधित वार्ता का संबंध है, मैं मंत्री जी से यह पूछना चाहूंगा कि अंतरिम राहत की शर्तें निर्धारित करने का फार्मूला किस तरह निश्चित किया जायेगा।

अंत में, मुझे आशा है कि मेरे माननीय मित्र, रेलवे मंत्री मुझे ऐसी स्थिति में समझने में गलती नहीं करेंगे, यदि मैं रेलवे बाबुओं से संबंधित एक उस घटना को यहां उद्धृत करूं जिसके बारे में, मैं उनसे बात करना चाहता था, क्योंकि इन रेलवे बाबुओं से मिलना भी पहले उनके लिए एक समस्या बनी हुई थी। मेरे पास अनेक पूर्वोदाहरण हैं और मैं अनेक बार उनके बारे में बात कर चुका हूं। वे पूर्वोदाहरण क्या हैं?

रेलवे में एक स्टेनोग्राफर्स एसोसिएशन है। इसके साथ ही रेल तंत्र की श्रेणी-दो की

एक आफिसर्स एसोसिएशन है। इसके अलावा नार्थ-ईस्टर्न मजदूर यूनियन, नार्थ-ईस्टर्न रेलवे एम्प्लाइज यूनियन तथा अनेक अन्य सेक्शनल एसोसिएशनें हैं। मेरी एसोसिएशन ने बार बार रेल मंत्री से अनुरोध किया है, किन्तु उन्होंने यह धारणा बना रखी है कि वह रेलवे बाबुओं से बात नहीं करेंगे। इसके परिणामस्वरूप रेलवे बाबू इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं और मैं उसी बात को दोहराना चाहूंगा, जो उन्होंने आरम्भ में कही थी कि रेलवे यूनियन के दोनों स्कंधों ने उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर कर रखी है, ऐसी स्थिति में इन लोगों को क्या राहत दी जायेगी?

मैं यह मानने को तैयार हूं, किन्तु मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र मेरी इस बात को समझ नहीं पाये हैं। मैं वास्तव में यह समझाने की चेष्टा कर रहा हूं कि कुछ तो रेलवे यूनियनें हैं और कुछ सेक्शनल एसोसिएशनें हैं—मैंने उनमें से चार के नाम भी बताये हैं—किन्तु इन सेक्शनल एसोसिएशनों को सरकार द्वारा मान्यता नहीं प्रदान की गई है, उदाहरण के तौर पर ये हैं—आल इंडिया रेलवे मिनिस्टिरियल स्टाफ एसोसिएशन, जो यह नहीं चाहती है कि उसमें अधिकांश रूप से चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की भरमार हो जाये। मैं ऐसे अनेक उदाहरण दे सकता हूं जिससे यह पता चलता है कि रेल प्रशासन का रवैया एक स्कंध—भारतीय राष्ट्रीय रेल कर्मचारी आंदोलन संगठन के प्रति पक्षपातपूर्ण रहा है।

मैं अपने माननीय मित्र श्री लाल बहादुर शास्त्री की एक बात से पूर्णतः सहमत हूं—वह परसों अजमेर में थे और मैं भी हाल ही में वहां गया था। वस्तुतः मैं गत रविवार को ही वहां गया था और वहां अजमेर में मेरे मित्र से मिलने के लिये हजारों व्यक्तियों का शिष्टमंडल आया था। मैं इसके बारे में कोई विवादास्पद बात नहीं कह रहा हूं। वास्तविकता यह है कि उन्हें कुछ समय पहले ही अपने निवास स्थान पर रेलवे बाबुओं का एक पांग पत्र प्राप्त हुआ था।

जब रेल मंत्री ने बात करते हुए यह बात कही कि कोई भी सेक्शनल एसोसिएशन मान्यता प्राप्त नहीं है तब माननीय सदस्य ने कहा कि वास्तव में शिकायत तो यही है रेल तंत्र से संबंधित द्वितीय श्रेणी आफिसर्स एसोसिएशन को आपने मान्यता प्रदान की है। तब तृतीय श्रेणी कर्मचारियों के संगठन को मान्यता क्यों नहीं प्रदान की गई? आल इंडिया रेलवे मिनिस्टिरियल एसोसिएशन अपने आप में एक संगठन है। इसके नाम में ही एसोसिएशन जुड़ा हुआ है। किन्तु मैं यह बात कहने का प्रयास कर रहा हूं कि आपको उससे औपचारिक रूप से मिलने में क्या कठिनाई है? आप उस समय अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल क्यों महसूस करते हैं, जब इस प्रकार का कोई मान्यता प्राप्त निकाय आपसे मिलने आता है और यह कहता है कि—"मंत्री महोदय, हमारी समस्यायें ये हैं?" जब

रेलवे बोर्ड को ज्ञापन प्रस्तुत करने का मामला होता है तो उन्हें उसकी पावती तक नहीं दी जाती है। मैं ऐसे अनेक उदाहरण दे सकता हूं। उन्हें रेलवे बोर्ड से कोई पावती प्राप्त नहीं होती है। मेरे माननीय मित्र इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न क्यों बना लेते हैं? यही प्रश्न है, जिसके बारे में मैं उनसे पूछना चाहता हूं।

यदि यह अनावश्यक है, तो मंत्री महोदय जो करना चाहें करें। मैं उन्हें नाराज नहीं करना चाहता हूं। मैं उन्हें केवल यह बताना चाहता हूं कि वह निकाय केवल अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए उनके दरवाजे तथा रेलवे बोर्ड के दरवाजे निरंतर खटखटा रहा है। वह उन्हें ऐसा करने का कोई अवसर नहीं देते हैं। मैं इस बात को पुनः कहना चाहूंगा कि रेलवे बाबू—सफेद कालर धारी व्यक्ति—वे व्यक्ति हैं, जिनकी प्रवृत्ति आपके कथनानुसार झक्की किस्म की होती है—जिसके बारे में मैं पहले ही कह चुका हूं और वह विश्व विख्यात होती है। वे पहली बार कर्मचारी संघ के प्रयोजनों के लिए एक जुट हुए हैं। अन्य व्यक्तियों से मुझे इसके प्रमाण तार द्वारा प्राप्त हुए हैं। इस विशेष दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मुझे उनकी बात कहने दें। मैं मंत्री महोदय पर कोई दबाव नहीं डाल रहा हूं। मैं उनसे केवल अनुरोध कर रहा हूं जिससे प्रेरित होकर संभवतः वह कोई कार्यवाही कर सकें। मंत्री महोदय रेलवे बोर्ड के साथ विचार-विमर्श करके यह कहें कि मेरा इरादा यह है और मैं आपके लिए यह करने को तैयार हूं किन्तु मैं जो भी करूंगा, तत्काल करूंगा ; मैं तीन वर्ष से प्रतीक्षा कर रहा हूं। यदि ऐसा न होता तो वे कब के हड़ताल करने का निर्णय ले चुके होते। सत्याग्रह कोई हड़ताल नहीं है।

संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रत्युत्तर का अधिकार है। शायद मैं घाटे में हूं लेकिन मैं एक मिनट से अधिक समय नहीं लूंगा। बात यह है कि बात यहां तक बढ़ गई है कि संकट उत्पन्न हो गया है और इसे हल करना होगा। यदि कल मंत्री जी दे रहे हैं तो अच्छी बात है। यह "वे सत्याग्रह" है। मुझे आशा है कि माननीय मंत्री उन्हें कल देने के लिए प्रबन्ध कर रहे हैं। यह एक सांकेतिक प्रदर्शन है जिसके टोकन के तौर पर 50,000 रेलवे बाबुओं द्वारा राष्ट्रपिता के नाम पर किया गया है और राष्ट्रपिता के सिद्धान्त अथवा विश्वास के अनुसार है। मैं श्री लाल बहादुर शास्त्री से एक व्यक्तिगत अपील करता हूं कि जो मैंने कहा है उसे वह गलत रूप में न लें। मैं यह विवाद खड़ा नहीं करना चाहता। मैं केवल उन के इस मामले में आगे कार्यवाही करने का अनुरोध कर रहा हूं। मैंने काफी दिनों तक रेलवे बोर्ड के व्यक्तियों से मिलने के लिए भागदौड़ की है। मैं आशा करता हूं कि रेलवे बजट की धारा 48 में दिये गये सूत्र के अनुसार वह वास्तविकता पर विचार करेंगे ताकि दस लाख रेल कर्मियों का अत्यधिक बुद्धिमान, शिक्षित और परिवर्तनशील

वर्ग दूसरी पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में नियंत्रण से बाहर न हो जायें। मेरा सिर्फ यहीं निवेदन है।

11

प्रेस

मैं इस विधेयक का विरोध करता हूं। मैं संवैधानिक और कानूनी तर्कों में भाग न लेने की इच्छा रखते हुए भी $12^1/_2$ घंटे की चर्चा में पूरे समय तक बैठा रहा। अब मैं एक श्रमजीवी पत्रकार के रूप में बोल रहा हूं जिस स्थिति में, पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान रहा हूं। और यहां तक कि मैं आज भी स्वंय को पत्रकार महसूस करता हूं। मुझे यहां ऊपर उस दीर्घा में बैठकर स्वर्गीय भूलाभाई देसाई, स्वर्गीय सत्यमूर्ति, स्वर्गीय जिन्ना के बीच क्रैक, मैक्सवेल तथा मुडी के विरुद्ध तीखी झड़पें देखने का लगातार दस वर्ष तक सुअवसर प्राप्त हुआ है। मुझे 1937 का वह ऐतिहासिक अवसर याद है, जब श्री सत्यमूर्ति दमनकारी कानूनों को निरस्त करने के बारे में लगातार सात घंटे तक बोलते रहे थे। मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि मुझे उस दीर्घा में और समाचार पत्र के सम्पादक और प्रोप्राइटर के रूप में काम करने का सुअवसर प्राप्त था।

मेरी आपत्तियां पांच हैं—मैं इनका संक्षेप में उल्लेख करूंगा—मुझे इस बात पर गहरा दुख है कि डा० काट्जू जैसे बड़े राजनेता द्वारा दिए गए आश्वासन और किए गए वायदे का कोई महत्व नहीं है। आपको उनकी संविधान संशोधन विधेयक पर चर्चा किए जाने की याद होगी और इस समय की भी जब 1951 में श्री राजगोपालाचारी बोले थे उस समय इस आशय के विशिष्ट आश्वासन दिए गए थे—और मैंने उन्हें यहां दर्ज करा लिया था—कि यह एक स्थायी उपाय नहीं होगा। मुझे यह बताते हुए खेद है कि यह स्थायी उपाय बन गया है इसके लिए दो वर्ष कभी पर्याप्त नहीं थे। मुझे दुख है कि गृह मंत्री इन आश्वासनों पर विश्वास नहीं करते अथवा उन्हें ये आश्वासन याद नहीं हैं। यदि वह उनके पूर्ववर्ती मंत्री द्वारा दिए गए आश्वासनों का सम्मान करने के लिए तैयार नहीं है, तब इस देश की ईश्वर ही रक्षा करेगा।

मैं इस विधेयक के संबंध में अपनी आपत्तियों को यथासंभव संक्षिप्त रूप में श्रेणीबद्ध

लोक सभा में 13 मार्च, 1954 को प्रेस (आपत्तिजनक मामले) संशोधन विधेयक पर हुए वाद-विवाद; कालम 2125-2129

करूंगा। मैं समझता हूं यह विधेयक एक दांडिक उपाय है। यह एक ऐसा उपाय है जिसने पत्रकार वर्ग पर दबाव डाला है। परदे के पीछे से कार्य करने की यह एक सतत प्रक्रिया है और यह पता भी नहीं लगेगा कि कब यह कानून के लम्बे हाथ की गिरफ्त में आ गया। मैं एक राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं बल्कि पत्रकार के रूप में अपने पच्चीस वर्षों के अनुभव से बोल रहा हूं। जो समाचार पत्र अपशब्दों की भाषा द्वारा किसी पर शाब्दिक प्रहार करते हैं, अथवा किसी का चरित्र हनन करते हैं, आपके द्वारा उनकी भर्त्सना किए जाने पर किसी को आपत्ति नहीं होती है। मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि मेरे माननीय मित्र, गृह मंत्री उनके विरुद्ध इच्छानुसार कार्यवाही करें। लेकिन इस मामले से निपटने के लिए साधारण कानून है, भारतीय दंड संहिता विद्यमान है।

मैंने सरसरी तौर पर उन समाचार पत्रों के नाम नोट करने का प्रयास किया है, जिनके विरुद्ध कार्यवाही की गई है। ये हैं—हिन्दी में उजाला, मराठी में उन्माद और मस्ती, तमिल में कलाई-नेसन और तेलुगू में मुलुकोला। मैं उनकी सूची तैयार कर सकता हूं। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि व्यक्तिगत रूप से शाब्दिक प्रहार अथवा चरित्र हनन करने वाले समाचार पत्रों के विरुद्ध सरकार द्वारा कार्यवाही की जाए—लेकिन यह कोई कारण नहीं है कि एक ऐसा विधेयक क्यों लाया जाए जिसके अंतर्गत पूरे पत्रकार वर्ग, सम्पूर्ण समाचार पत्र व्यवसाय को दंड देने का प्रस्ताव किया जाए। मैं समझता हूं कि इस देश में जन सेवा के कार्य में समाचार पत्र व्यवसाय की अत्यन्त गौरव-शाली भूमिका रही है। मुझे लगभग दस वर्षों तक विभिन्न स्थानों पर विदेशों में रहने का अवसर मिला है और अन्य देशों में समाचार पत्रों के कार्यकरण के संबंध में मुझे थोड़ी बहुत जानकारी है। मैं गर्व के साथ कह सकता हूं कि इस देश में हम उन समाचार पत्रों और अनेक व्यावसायिक संघों पर अब भी विश्वास कर सकते हैं जो समाचार पत्रों और यहां तक कि अन्य प्रकाशनों के संबंध में भी उच्च आचार संहिता और नैतिकता स्थापित कर रहे हैं।

मैं इस विधेयक के संबंध में अपनी आपत्तियां बताता हूं। मुझे यह बताते हुए खेद है कि जिला न्यायाधीश और जूरी को सक्षम अधिकारी बनाया जा रहा है। यह एक बहुत ही गुप्त प्रक्रिया का भाग है जिसके द्वारा सरकार फ्रांसीसी लोगों का कानूनी अधिकारी प्रदत्त प्रशासन जैसा प्रशासनिक न्याय लागू करने का प्रयास कर रही है। मैंने देखा है कि श्रम और भ्रष्टाचार के मामलों के लिए तदर्थ न्यायाधिकरणों तथा निवारक

नजरबंदी के मामलों के लिए सलाहकार परिषदों का किस प्रकार संचालन किया जा रहा है। थोड़ा थोड़ा करके देश के कानूनों को खंडित किया जा रहा है और विशेष प्रक्रियाएं और न्यायाधिकरण बनाए जा रहे हैं। न्यायाधीश और जूरी के कार्य से संबंधित उपबंध आवश्यक नहीं हैं।

दूसरी आपत्ति यह है हमने अपने राज्य को एक कल्याणकारी राज्य घोषित किया है। दुर्भाग्यवश यह तेजी से नौकरशाही प्रधान राज्य बनता जा रहा है। प्रशासन का संचालन न तो संसद कर सकती है, न राज्य विधानमंडल, केन्द्र अथवा राज्य के ही कर सकते हैं। धीरे-धीरे प्रशासन का प्रत्येक पहलू नौकरशाहों के हाथों में सीमित होता जा रहा है। यदि मैं गलत नहीं कह रहा हूँ तो इन समाचार पत्रों में सचिवालय के किसी छोटे विभाग में मुकदमों का अनुभव रखने वाला कोई व्यक्ति यही निर्णय करेगा कि अमुक-अमुक समाचार पत्र के विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए, और तभी सम्पूर्ण तंत्र में तेजी आ जाती है और अन्त में मुकदमे आरम्भ हो जाते हैं। श्री चटर्जी ने दिल्ली में एक मामले की ओर ध्यान आकर्षित किया है जहां तीन हजार रुपाए मांगे गए थे। इस मामले के बारे में व्यक्तिगत रूप से मुझे भी कुछ जानकारी है, क्योंकि मैं लगभग बीस वर्षों से दिल्ली का निवासी रहा हूँ। एक छोटे से आदमी से अपने कार्य के दौरान गलती हो जाने के कारण हड़कम्प मच गया।

तीसरी आपत्ति यह है मुझे आशा थी कि श्री चटर्जी भारत में समाचार पत्रों का प्रबंध संचालन कर रहे प्रेस उद्योगपतियों के विरुद्ध बहुत शोर शराबा करेंगे। मुझे पता है कि इन प्रेस बैनों के कार्यकलापों की जांच करने के लिए उच्च पदासीन लोगों के पुत्रों तथा दामादों को नियुक्त किया जा रहा है। ऐसे मामले होते हैं। इस देश में हजारों की संख्या में मौजूद छोटे समाचार पत्र वास्तव में स्वतंत्रता के दीप स्तंभ तथा पथ प्रदर्शक हैं। इस विधेयक का उपयोग उन छोटे तथा स्वतंत्र समाचार पत्रों के विरुद्ध किया जाएगा जिनका मुंह बन्द करने की बात कही जा रही है। यह विधेयक मुझे विशेष रूप से "प्रिन्सेज प्रोटेक्शन बिल" की याद दिलाता है जिसमें नौकरशाही, कतिपय राजनीतिक दलों तथा अन्य व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करने की बात कही गई है।

मेरी चौथी आपत्ति यह है कि अधिकांश साप्ताहिक पत्रिकाएं मुद्रणालयों में जाब-प्रिंटिंग के आधार पर मुद्रित की जाती हैं जैसाकि पंडित ठाकुर दास भार्गव ने कहा कि यह समाचार पत्रों अथवा मुद्रणालय संचालकों को दिया जाने वाला साधारण काम है। अब प्रतिनिधिक दंड दिए जाने की बात कही गई है। मुझे अनेक मामलों की जानकारी है।

समाचार पत्रों और पुस्तकों का मैं स्वयं प्रकाशक रहा हूँ और मैं आपको यह बता सकता हूँ। आप मुद्रकों को भी इस मामले के लिए जिम्मेदार ठहरा रहे हैं जिन्हें यह काम कम्पोजीशन के लिए दिया गया है, जिसे वे समझ नहीं सकते, जिसके बारे में, किसी भी स्थिति में, वे उन पर नियंत्रण रखने अथवा निश्चय करने का संभवतः कोई भी कार्य नहीं कर सकते। इसे मैं अत्यंत आपत्तिजनक समझता हूं। मुझे दुख है कि इस कानून के अंतर्गत मुद्रणालयों को दंड दिया जा रहा है।

यह मेरा अंतिम मुद्दा है। इंग्लैंड, अमेरिका, ईरान, दक्षिण अफ्रीका, जोर्डन तथा विश्व के अन्य भागों में किसी मित्र राष्ट्र के प्रमुख की आलोचना करने पर किसी समाचार पत्र की खिंचाई करने का कोई उपबंध नहीं है।

देश के सामान्य कानून के अन्तर्गत इनके विरुद्ध कार्यवाई की जानी है। इसके-लिए मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता कि हमें इस तरह का कानून क्यों बनाना चाहिए और इस मुद्दे को इस कानून के दायरे में क्यों लाना चाहिए।

मैं पुनः यह बात कह रहा हूं कि समूचा देश अश्लील साहित्य को हटाने के मामले में सरकार के साथ है, लेकिन इसके अन्य प्रबंधों के साथ हमें कोई सहानुभूति नहीं है। जब समाचारपत्रों द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त की जाएगी तो अकेला ईश्वर ही जानता है कि इस स्थिति में सरकार कहां होगी और सत्तारूढ़ दल कहां होगा। खैर, मैं यह अवश्य कहूंगा कि पत्रकारों की एक आचार संहिता है और वे दिन प्रतिदिन बेहतर आचार-व्यवहार अपनाने का प्रयास कर रहे हैं। आप एक तिब्बती की भांति ईश्वर का जाप करते हुए अपनी चरखी घुमा रहे हैं और मैं आशा करता हूं कि भगवान आपकी अवश्य सुनेगा। इसलिए इस अनिष्टकारी कानून को निष्ठुरता से लागू न करें।

II*

सभा के समक्ष प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक है जिसे व्याख्यात्मक ज्ञापन प्रकृति का विधेयक बताया गया है। लेकिन मैं यह अवश्य कहूंगा कि चाहे यह विशुद्ध रूप से आकंड़ों के संकलन का प्रश्न ही क्यों न हो, इस विधेयक में बड़े

---

*प्रैस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक पर हुए वाद-विवाद से उद्धृत, लोक सभा, 21 नवम्बर, 1955, पृ० 19-22

महत्वपूर्ण मुद्दे अन्तर्निहित हैं। क्योंकि यह विधेयक प्रेस आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप लाया गया है। विशेषकर समाचारपत्र की दुनिया में तथा सामान्य रूप से देश में माननीय प्रभारी मंत्री डा० केशर द्वारा लाये गए विधेयक से बेहतर और व्यापक विधेयक की उम्मीद की गई थी।

मैं संक्षिप्त रूप से कहना चाहूंगा तथा स्पष्ट रूप से इस तथ्य को उजागर करना चाहूंगा कि उक्त विधेयक के उपबन्ध आयोग द्वारा की गई कुछ सिफारिशों के अनुरूप नहीं हैं।

माननीय मंत्री डा० केशर ने कहा कि कुछ विशेष कारणों की वजह से पंजीयक को विभिन्न श्रेणियों की सूचना संकलित करने की आश्यकता नहीं पड़ी। यहां मेरे पास आयोग द्वारा की गई सिफारिशों की सूची है, जिन्हें विधेयक के उपबंधों में से हटा लिया गया है। मैं संक्षिप्त रूप से सभा को इसकी जानकारी देना चाहूंगा। उदाहरण के लिए आयोग ने सिफारिश की है कि कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत समुचित संशोधनों के साथ निर्धारित प्रपत्र में लेखा-परीक्षित लाभ और हानि के खातों की प्रतिलिपियों, सम्पादकीय और प्रबंधकीय दोनों शाखाओं में वेतन-ग्रुपों के अनुसार वर्गीकृत करके इनके कर्मचारियों के ब्यौरे, प्रत्येक शहर और जिले में समाचार पत्रों के परिचालन के विवरण, एजेंटों को दिए गए समाचार पत्रों की बिक्री के कमीशन के बारे में विशेष विवरण, अखबारी कागज की खपत, विज्ञापन से प्राप्त आय तथा दिये गए कमीशन आदि के बारे में सूचना पंजीयक कार्यालय के माध्यम से उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ये कुछ मुद्दे हैं जिनके बारे में आयोग ने अत्यन्त सकारात्मक सिफारिशें की हैं। लेकिन मुझे खेद है कि माननीय सूचना और प्रसारण मंत्री ने उपर्युक्त बातों को पंजीयक के कर्तव्यों में शामिल नहीं किया, जबकि पंजीयक कार्यालय पर हो रहे खर्च को करदाताओं को ही वहन करना होता है।

इससे भी महत्वपूर्ण मुद्दा, जो कि आयोग की सिफारिशों में उल्लिखित है और जिसका दुर्भाग्यवश विधेयक में कोई हवाला तक नहीं दिया गया है, इस विधेयक को समाचार एजेंसियों पर लागू करने के संबंध में है। मुझे खेद है कि इस विधेयक के दायरे में भारतीय समाचार एजेंसियों को जिस सीमा तक सम्मिलित नहीं किया गया है उस सीमा तक यह विधेयक इस आशय से एक निष्क्रिय विधेयक बनकर रह जाएगा, क्योंकि इसके अन्तर्गत इस देश में समाचार पत्रों की सक्रियता के व्यापक क्षेत्र को शामिल नहीं किया गया है। मुझे पूरी उम्मीद है कि मंत्री महोदय इस अन्तिम चरण में प्रारूपित विधेयक में आनुषंगिक संशोधनों के माध्यम से इसमें उक्त विषय को शामिल करने पर आवश्यक विचार करेंगे। मुझे विश्वास है कि समूचा देश और समूचा समाचारपत्र—व्यवसाय जगत

मेरे इस विशेष सुझाव का समर्थन करेगा, क्योंकि मैं जानता हूं कि इस खामी अथवा त्रुटि की कहीं भी कोई प्रशंसा नहीं की गई है। वास्तव में समाचार पत्र व्यवसाय को इस विधेयक के दायरे से बाहर रखने का भारी विरोध हुआ है। यहां मैं आपका ध्यान इन्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूजपेपर सोसाइटी के प्रेजीडेन्ट श्री निर्मल घोष द्वारा माननीय मंत्री जी को लिखे गए पत्र की ओर दिलाना चाहता हूं, जिसमें उन्होंने सरकार से सहयोग करने की बजाय मंत्री महोदय को कतिपय आशंकाओं, कठिनाइयों और अड़चनों के घेरे में डाल दिया। काश मेरे पास इस पत्र में उल्लिखित सभी मुद्दों का अध्ययन करने का समय होता और मुझे विश्वास है कि मंत्री महोदय इस पत्र में उठाई गई बातों का खण्डन नहीं करेंगे। इसमें कहा गया है कि कार्यरत पत्रकार की परिभाषा बढ़ाचढ़ाकर दी गई है और इससे प्रशासन में समस्याएं पैदा हो जाएंगी। यहां उक्त उद्योग के अन्तर्गत किसी सुव्यवस्थित यूनिट की शाखा के दावों को भी मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। इसके पश्चात इसमें यह कहा गया है कि यह सुनिश्चित करने का अवश्य प्रयास किया जाये कि 5 लाख अथवा इससे अधिक का कारोबार करने वाले समाचारपत्रों को ही इस विधेयक के दायरे में लाया जाये। मैं केवल यही कहना चाहता था कि सरकार द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही का समूचे समाचार पत्र व्यवसाय ने विशेषकर इसके एकाधिकार वर्ग ने विरोध किया है और मेरा गम्भीरतापूर्वक यह सुझाव है कि शायद मंत्री महोदय, समाचारपत्र व्यवसाय के इस विरोध के कारण सूचना की इस श्रेणी को जिस पर प्रेस आयोग द्वारा सिफारिशें की गई हैं और जिन्हें मैं पहले ही उद्धृत कर चुका हूं—विधेयक में सम्मिलित करने में कुछ अनिश्चय की स्थिति में थे।

मैं समझता हूं कि सभा को एक और तथ्य जानने का अधिकार है कि पंजीयक के अलावा एक प्रेस परिषद् है, जिसका अपना कार्य है। प्रेस परिषद् पर्याप्त सूचना प्राप्त हुए बिना काम नहीं कर सकती और यदि इस प्रकार सूचना, जिसका मैं यह उदाहरण दे चुका हूं, कि जैसा कि प्रेस आयोग ने कहा है, उसी विधेयक के दायरे में लाया जाना चाहिए, प्रेस परिषद् को उपलब्ध नहीं कराई जाती, तो यह भलीभांति कार्य नहीं कर सकता। यह एक अतिरिक्त कारण है जिसकी वजह से मैंने यह कहने का साहस किया कि मंत्री महोदय को इस स्थिति में भी यह मान लेना चाहिए कि विधेयक के उपबन्धों में किन-किन बातों को सम्मिलित किया जाना है और प्रेस आयोग द्वारा की गई विशेषकर उन सिफारिशों को, जिनकी ओर मैंने ध्यान दिलाया है, विधेयक के उपबंधों में शामिल कर लिया जाए ताकि सूचना का रजिस्टर प्रेस परिषद के लिए पूर्णतः तथा व्यापक रूप से लाभदायक बन जाए। मुझे विश्वास है कि मंत्री महोदय इस बात से इन्कार नहीं करेंगे कि प्रेस परिषद्

सुचारू रूप से कार्य करने में सक्षम हो तथा इसे सूचना प्राप्त होती रहे और यही कार्य मैं समझता हूं इस स्तर पर अवश्य किया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए मैं कुछ सुझाव देता हूं—और मुझे विश्वास है कि मंत्री महोदय इतने विलम्ब की स्थिति में भी मेरे सुझावों को स्वीकार करने की बात पर ध्यान देंगे—

कि पंजीयक को निम्न मुद्दों पर सूचना एकत्र करने के लिए जिम्मेवार ठहराया जाना चाहिए—

(क) सरकार द्वारा निर्धारित ब्यौरे एवं शैली में लेखापरीक्षित लाभ और हानि के खातों तथा तुलन-पत्र की प्रतिलिपियां। (मैं समझता हूं कि सरकार इस सूचना को प्राप्त करने हेतु एक प्रक्रिया निर्धारित कर सकती है)

(ख) सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में अंशदाताओं की सूची।

(ग) प्रत्येक वर्ष के अन्तिम दिवस की स्थिति के अनुसार कर्मचारियों की सूची, उनका वर्गीकरण, उनके वेतनमान, छुट्टी के नियम आदि।

(घ) ऐसे कर्मचारियों की संख्या जिन्हें बर्खास्त किया गया, जिन्होंने त्यागपत्र दिया अथवा नौकरी छोड़ने तथा उन्हें भुगतान की गई राशि आदि।

यह सूचना यह सुनिश्चित करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जब अन्ततः आयोग की अन्य सिफारिशें कार्यान्वित की जाएंगी, तो समाचारपत्र व्यवसाय के कर्मचारियों के मुद्दों का भी भली-भांति निपटारा किया जा सकेगा।

मैं एक मुद्दे पर जोर देकर यह बताना चाहूंगा कि समाचारपत्र व्यवसाय के अन्तर्गत गठित प्रेस का एकाधिकार वर्ग न केवल समाचारपत्र व्यवसाय के लिए खतरनाक है, बल्कि यह काफी हद तक इस देश के लिए भी खतरनाक है। मेरे सहित कोई भी व्यक्ति सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को मार देना नहीं चाहेगा। आज भारत में समाचार पत्र उद्योग, विशेषतः इसका एक बड़ा भाग, एकाधिकार वर्ग के एक कड़ी के आधार पर चलता है। मैं प्रेस के विनाश की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो यह इसमें सुधार की बात कर रहा हूं और मुझे विश्वास है कि मंत्री महोदय इस बात पर असहमत नहीं होंगे। इसमें हर तरीके से सुधार किया जाना चाहिए और जिस प्रकार की सूचना का मैंने अभी उल्लेख किया वह अत्यावश्यक है और यदि विधेयक के दायरे में इतने विलम्बित समय में भी समुचित संसाधनों को स्वीकार कर लिया जाये, तो यह आवश्यक सूचना उपलब्ध कराई जा सकती है और मुझे पूरी उम्मीद है कि मंत्री इसे उपहास के रूप में नहीं लेंगे।